ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वार्षिक चंदा ₹ 150

मई 2020

आजीवन सदस्यता ₹ 1500

वर्ष 53

अंक 5

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 53 | मई 2020 | अंक 5

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
केंचुआ खाद : लाभ एवं बनाने की विधि	✍ राकेश कुमार, कौटिल्य चौधरी एवं एस. के. ठकराल	1
उर्वरकों का सही चुनाव : आवश्यक	✍ देवेंद्र सिंह जाखड़, देवराज एवं सुनील बैनीवाल	2
भूमिगत खारे पानी का सुरक्षित प्रयोग	✍ देवेंद्र सिंह जाखड़, देवराज एवं सुनील बैनीवाल	3
फल के बागों में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली द्वारा पानी व खाद का प्रबंध	✍ रवि, प्रमोद शर्मा एवं अजित सांगवान	3
वर्षाकालीन मूंग की उन्नत कृषि क्रियाएं	✍ रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं जयलाल यादव	5
पपीते को बचाएं — रोगों से	✍ आदित्य, जे.एन. भाटिया एवं फतेह सिंह	6
जल संरक्षण और वर्षा जल संचयन के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण	✍ सुषमा बिष्ट, एच. के. यादव एवं धर्मेंद्र सिंह	7
वर्तमान परिपेक्ष्य में : आहार के रूप में – गेहूं	✍ विरेन्द्र दलाल, राजेश कथवाल एवं आर. के. राणा	9
खुम्ब : पौष्टिकता एवं औषधीय गुण	✍ आदित्य, जे.एन. भाटिया एवं फतेह सिंह	10
बी.टी. कपास : कीट एवं समन्वित प्रबंधन	✍ चित्रलेखा, एन. के. यादव एवं नवीश कुमार कम्बोज	11
कीटनाशकों का उपयोग — सुरक्षा के साथ	✍ नरेन्द्र सिंह, जयलाल यादव एवं हवा सिंह सहारण	12
गर्मी व लू से फलदार पौधों का बचाव	✍ सुलेमान मोहम्मद एवं अनिल कुमार	20
ग्रीष्मकालीन जुताई : कृषि में महत्व	✍ विनोद कुमार एवं सूबेसिंह	20
स्वर्ग का वृक्ष -सिमरु बाग्लौका (चमत्कारी वृक्ष/लक्ष्मीतरु)	✍ बिमलेन्द्र कुमारी, प्रीति सिंह एवं ज्योति	21
जैविक खेती के लाभ और उपाय	✍ नेहा, वि. कुमार एवं एम. एस. जटाना	22
भूमि क्षरण का गहराता संकट : कारण एवं निवारण	✍ प्रमोद शर्मा, संजय कुमार एवं कनिष्क वर्मा	24
कपास में खरपतवारों की रोकथाम	✍ विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं सतबीर पूनिया	26
फसल अवशेष जलाने के दुष्परिणाम एवं प्रबन्धन विकल्प	✍ सपना, अमनदीप सिंह एवं सूबेसिंह	26
सोयाबीन उत्पाद: प्रोटीन का उत्कृष्ट स्रोत	✍ अरुण कुमार अटकान, सुनील कुमार एवं नितिन कुमार	27
वृद्धावस्था में तनाव से राहत	✍ आशमा एवं मंजु दहिया	28
Agro-physics in the Field of Agriculture and Environment	✍ Ankush Sheoran, Ekta Arya and Satyawan Arya	29
Teak (*Tectonagrandis*) : A Long Term FD for Farmers	✍ B. S. Mandal, Neelam Mandal and Jagdish Chander	30
Processing of Aonla for Candy Preparation	✍ Peter Mwaurah, Ravi Kumar and Nitin Kumar	31
स्थाई स्तम्भ : जून मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

संपादक (अंग्रेज़ी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

केंचुआ खाद : लाभ एवं बनाने की विधि

✍ **राकेश कुमार, कौटिल्य चौधरी एवं एस. के. ठकराल**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज के महंगाई के ज़माने में अधिक पैदावार लेने के लिए किसान रासायनिक उर्वरकों का बहुत ज़्यादा प्रयोग कर रहे हैं जिससे उन्हें अच्छी पैदावार तो मिल जाती है परंतु इससे समय के साथ भूमि की उपजाऊ शक्ति कम होती रहती है। भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने के लिए समन्वित तत्व प्रबंधन अपनाना चाहिए जिसके अंतर्गत प्राकृतिक खादों का प्रयोग बढ़ेगा। इन खादों में पौधे के लिए आवश्यक मुख्य तत्व, गौण तत्व व सूक्ष्म तत्व मौजूद होते हैं। गोबर को हम अधिकतर ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं जिससे वातावरण भी प्रदूषित होता है। हमें गोबर का प्रयोग खाद बनाने में करना चाहिए। सामान्य तौर पर हम गोबर की खाद या कंपोस्ट बनाते हैं तो उसमें कुछ पोषक तत्वों की हानि हो जाती है। हम इस खाद या कंपोस्ट को केंचुओं की सहायता से बना सकते हैं। केंचुए जैविक कचरे को खाकर गुणवत्ता युक्त पदार्थों में रूपांतरित कर देते हैं। इस विधि को हम वर्मीकंपोस्टिंग कहते हैं व इससे तैयार कंपोस्ट को वर्मी कंपोस्ट या केंचुआ खाद कहते हैं। खाद बनाने की प्रक्रिया में जैविक कचरा केंचुओं के द्वारा खाया व पचाया जाता है इस दौरान केंचुओं की आंतों द्वारा उत्सर्जित स्रावित पदार्थ पाचित पदार्थों में मिल जाते हैं जो शरीर से निकलने के बाद वर्मी कास्ट के रूप में केंचुआ खाद बनाते हैं। ये वर्मी कास्ट पौधे के लिए हानिकारक जीवों को दूर भगाने का काम करते हैं।केंचुआ खाद को हम न केवल अपने खेतों में प्रयोग कर सकते हैं बल्कि इस खाद को बेचकर हम काफी अच्छी आमदनी भी कमा सकते हैं।

केंचुआ खाद के प्रयोग के लाभ :

- पौधे के लिए आवश्यक पोषक तत्व संतुलित मात्रा में मिलते हैं।
- इस खाद में पौधे की वृद्धि वाले हारमोन पाए जाते हैं।
- इस खाद के उपयोग से फसलों की अधिक उत्पादकता एवं उच्च गुणवत्ता लाई जा सकती है।
- खाद के प्रयोग से मिट्टी में हानिकारक रसायनों की पौधों के लिए उपलब्धता में कमी आ जाती है।
- मिट्टी में लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है।
- मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है तथा भूमि की भौतिक संरचना में सुधार होता है जिसके कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है।
- मिट्टी की पानी पकड़ने की क्षमता में वृद्धि होती है।
- मिट्टी में पानी व वायु का संचार अच्छी तरह से होता है जिसके कारण पौधे की जड़ों की वृद्धि अच्छी होती है।
- गोबर को ईंधन के रूप में प्रयोग होने के बाद होने वाले पर्यावरण प्रदूषण से बचा जाता है।
- पशुशाला के कूड़े करकट एवं फसलों के अवशेषों का सही उपयोग होता है।

केंचुआ खाद में विभिन्न तत्वों की मात्रा :

नत्रजन	:	1 से 3 प्रतिशत
फास्फोरस	:	1 से 1.5 प्रतिशत
पोटाश	:	2 से 3 प्रतिशत

इन मुख्य तत्वों के अलावा कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर (गौण तत्व) व लोहा, जस्ता, तांबा, मैंगनीज़ व बोरोन इत्यादि (सूक्ष्म तत्व) भी कुछ मात्रा में पाए जाते हैं।

केंचुआ खाद बनाने की विधि :

1. *मेंढ में बनाना :* इस विधि से खाद जल्दी से तैयार हो जाता है। मेंढ की लंबाई,चौड़ाई और ऊंचाई निम्नलिखित प्रकार से रखते हैं–

लंबाई	:	आवश्यकतानुसार
चौड़ाई	:	3 फुट
ऊंचाई	:	2 फुट

2. *गड्ढे में बनाना :* बहुत अधिक गर्मी या सर्दी के मौसम में केंचुओं को अनुकूल वातावरण प्रदान करने के लिए यह विधि अपनाई जा सकती है। हम कच्चे गड्ढे का प्रयोग करते हैं। गड्ढा ईंट व सीमेंट से पक्का भी बनाया जा सकता है। गड्ढे की लंबाई, चौड़ाई और गहराई निम्नलिखित प्रकार से रखते हैं :

लंबाई	:	आवश्यकतानुसार
चौड़ाई	:	3 फुट
गहराई	:	2 फुट

3. *सीमेंट के घेरे में बनाना :* सीमेंट का घेरा ज़मीन की सतह से ऊपर रखकर खाद को तैयार करने के प्रयोग में लाते हैं। जब खाद तैयार हो जाती है तो इस घेरे को हटाकर केंचुओं व खाद को अलग कर लेते हैं। फिर इस घेरे को किसी अलग स्थान पर रख देते हैं और फिर से खाद तैयार करते हैं। घेरे का निम्नलिखित आकार अच्छा माना जाता है :

व्यास	:	3 फुट
ऊंचाई	:	1 फुट

खाद बनाने की तीनों विधियों में विभिन्न सामग्रियों का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

1. सबसे नीचे लगभग आधा फुट मोटी परत बनाते हैं जिसमें पुराने अखबार या गत्ते बिछाकर उनके ऊपर पराली, सरसों, मोटी कड़बी, अन्य भूसे, पेड़ों की छाल या लकड़ी का बुरादा आदि डाल सकते हैं।
2. इस परत के ऊपर एक तिहाई फुट मोटी गोबर (2 सप्ताह पुराना) की परत लगाई जाती है।
3. इस परत के ऊपर एक से डेढ़ फुट मोटी घर के कूड़ा करकट या फसल अवशेषों की परत लगाई जाती है।
4. इसके ऊपर खेत की मिट्टी की पतली सी परत (5 सैं.मी.) लगाई जा सकती है व इस परत के ऊपर पतली सी गोबर की परत (5 सैं.मी.) लगाई जा सकती है।
5. ऊपर दी गई विधि से बनाए गए मेंढ, गड्ढे या सीमेंट के घेरे में 250 केंचुए प्रति क्विंटल सामग्री की दर से लगा दिए जाते हैं।
6. केंचुए केवल अंधेरे में काम करते हैं इसलिए मेंढ,गड्ढे या सीमेंट के घेरे में डाली गई सामग्री को कड़वी या बोरी से अच्छी तरह से ढक देते हैं।
7. केंचुओं के अच्छे प्रजनन व सही तरह से काम करने के लिए अच्छी नमी की आवश्यकता होती है। बेड में उपयुक्त नमी (नमी संग्रहण क्षमता का 75 प्रतिशत) होना चाहिए। इस नमी को बनाए रखने के लिए सर्दियों में एक बार व गर्मियों में 3 बार पानी देना चाहिए। गर्मियों में सुबह, दोपहर व शाम को पानी देना चाहिए। शुरुआत में पानी की अधिक आवश्यकता होगी जो कि समय के साथ कम होती जाएगी।

अगर खाद कम मात्रा में तैयार किया जा रहा है तो छिड़काव से पानी दें, नहीं तो पानी की नाली से पानी दे सकते हैं। पानी केवल इतनी मात्रा में दें जिससे पूरी सामग्री ऊपर से नीचे तक गीली हो। पानी को अधिक मात्रा में भी नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे वायु के संचार में बाधाएं उत्पन्न होंगी जिससे कि केंचुओं के प्रजनन व खाद बनाने की क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

8. केंचुए बिना किसी अधिक देखभाल के अपने आप को जिंदा रख सकते हैं। ये अधिक गर्मी व सर्दी में भी अपने आप को जीवित रखते हैं परंतु इन परिस्थितियों में इनकी प्रजनन की क्षमता व भोजन ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है। खाद बनाने के लिए 15 से 25 डिग्री का तापमान अनुकूल रहता है। सर्दियों में तापमान को अधिक रखने के लिए 8 से 10 दिन में ताज़ा गोबर की पतली सी परत खाद्य सामग्री पर लगानी चाहिए।
9. गर्मियों में तापमान को थोड़ा कम रखने के लिए खाद बनाने के स्थान के चारों तरफ 2 से 3 फुट की चौड़ी ढेंचा की पट्टी लगानी चाहिए।
10. हर 15 दिन के अंतराल पर संपूर्ण सामग्री की पलटाई करनी चाहिए। इस प्रकार से 60 से 70 दिन में हम खाद तैयार कर सकते हैं। जब खाद का रंग गहरे भूरे से काला हो गया हो तो यह हमें दर्शाता है कि खाद तैयार है। खाद तैयार होने के बाद पानी देना बंद कर देना चाहिए ताकि केंचुए नीचे चले जाएं। ऊपर की खाद को छान कर अलग कर लेते हैं जिससे केंचुए व खाद अलग-अलग हो जाते हैं।

जहां पर केंचुआ खाद तैयार कर रहे हों वहां कोने में एक गड्ढे का निर्माण करना चाहिए जिसमें गोबर व फसल अवशेष डाले जा सकें। फसल अवशेषों को काटकर डालें। गोबर व फार्म अवशेषों को गड्ढे में डालकर प्रतिदिन पानी से गीले करते रहना चाहिए। इस प्रकार 2 सप्ताह में सामग्री मेंढ, गड्ढे या सीमेंट के घेरे में डालने के लायक हो जाएगी। केंचुओं को आंशिक रूप से गले कार्बनिक पदार्थ ही देने चाहिएं।

केंचुए की खाद बनाते वक्त ध्यान देने योग्य बातें :

- ❑ खाद केवल छायादार स्थान में ही बनाएं।
- ❑ खाद बनाने वाली जगह पर बरसात का पानी एकत्रित नहीं होना चाहिए।
- ❑ कभी-कभी पशुओं को कीड़े मारने की दवाइयां दी जाती हैं तो ऐसी गोबर का प्रयोग न करें जिसमें इनके अंश होने की आशंका हो।
- ❑ घर में इस्तेमाल किए गए साबुन और डिटर्जेंट के पानी को खाद बनाते वक्त प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- ❑ छोटे कीड़े मकोड़े,चिड़िया, चूहे व अन्य छोटे जंतु केंचुए को नुकसान पहुंचाते हैं। इसलिए इनसे बचाव के पर्याप्त उपाय किए जाने चाहिएं। ●

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

उर्वरकों का सही चुनाव : आवश्यक

✍ **देवेंद्र सिंह जाखड़, देवराज[1] एवं सुनील बैनीवाल**
कृषि विज्ञान केंद्र सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

उचित भूमि प्रबंध न होने तथा लगातार अधिक उपज देने वाली किस्मों से मृदा में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का निरंतर ह्रास हो रहा है। अधिक फसल उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग और बढ़ता जा रहा है। मृदा में सभी आवश्यक पोषक तत्व सम्पूर्ण मात्रा में उपलब्ध नहीं होते जिसके कारण मृदा में उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। परंतु इनका सही ढंग से प्रयोग न होने के कारण कृषकों को इनका पूरा-पूरा लाभ नहीं मिल पाता है। चूंकि मृदा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले उर्वरक एक कीमती साधन हैं। अत: इनकी संतुलित मात्रा का उचित समय पर समुचित विधि द्वारा फसल विशेष के लिए प्रयोग में लाना आवश्यक है जिससे कि इनका पूरा-पूरा लाभ मिल सके। अत: यह आवश्यक है कि सही उर्वरक का चुनाव किया जाये ताकि इसकी उपयोग क्षमता बढ़ाई जा सके। उर्वरकों के चुनाव में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- ❑ अपने खेत का मृदा परीक्षण करवाएं तथा भूमि में जिस तत्व की कमी हो उसी तत्व युक्त उर्वरकों का प्रयोग करें।
- ❑ अम्लीय मृदा में उन नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए जो भूमि पर अपना क्षारीय प्रभाव डालें जैसे कैल्शियम नाइट्रेट तथा पोटाशियम नाइट्रेट। ऐसी मृदा में घुलनशील फास्फेटिक उर्वरकों का प्रयोग करना लाभदायक होता है। लवणीय मृदा में गोबर की खाद तथा हरी खाद का प्रयोग सर्वोत्तम है। इन मृदा में अम्लीय प्रकृति वाले उर्वरकों जैसे कि अमोनियम सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए।
- ❑ मृदा में फास्फोरस की अत्यधिक कमी की दशा में पानी में घुलनशील फास्फोरसयुक्त उर्वरकों जैसे कि सिंगल सुपर फॉस्फेट, डबल सुपर फॉस्फेट तथा ट्रिपल सुपर फॉस्फेट का प्रयोग करना चाहिए।
- ❑ चिकनी मृदा में जैविक खादों का प्रयोग करने से इसमें हवा का संचार अधिक होता है तथा इसकी भौतिक दशा में सुधार होता है।
- ❑ रेतीली मृदा में पोषक तत्वों का निक्षालन ह्रास होने की संभावना अधिक रहती है। अत: इस मृदा में जैविक खादों (गोबर खाद, केंचुआ खाद आदि) का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए ताकि मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ाई जा सके। खड़ी फसल पर पोषक तत्वों की उचित मात्रा पानी में घोल कर पर्णीय छिड़काव करना लाभदायक रहता है।
- ❑ कम अवधि की फसलों में शीघ्र उपलब्ध होने वाली तथा लम्बी अवधि की फसलों में धीरे-धीरे पोषक तत्व प्रदान करने वाली खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
- ❑ लम्बी अवधि की फसलों में साइट्रेट घुलनशील (डाई कैल्शियम फॉस्फेट) एवं कम अवधि की फसलों में पानी में घुलनशील फास्फेटिक (एसएसपी, डीएसपी तथा टीएसपी) उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
- ❑ कम नमी वाली मृदा में नाइट्रेट युक्त उर्वरकों (सोडियम नाइट्रेट, कैल्शियम नाइट्रेट तथा पोटाशियम नाइट्रेट) तथा सिंचित एवं अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मृदा में अमोनिकल या एमाइडयुक्त (अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम सल्फेट तथा डीएपी) उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
- ❑ उर्वरकों का प्रयोग संतुलित रूप में करना चाहिए। नाइट्रोजन फास्फोरस एवं पोटाश युक्त उर्वरकों को मृदा जांच के आधार पर देने से सभी उर्वरकों की उपयोग क्षमता बढ़ाई जा सकती है। ●

[1]जिला विस्तार विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र पानीपत

भूमिगत खारे पानी का सुरक्षित प्रयोग

✍ देवेंद्र सिंह जाखड़, देवराज एवं सुनील बैनीवाल
कृषि विज्ञान केंद्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सघन खेती, बौनी तथा अधिक जल मांग वाली फसलों के प्रचलन के कारण नहर का पानी आवश्यकता को पूरी करने के लिए न काफी है। एक कमी को पूरा करने के लिए भूमिगत जल से सिंचाई का प्रचलन बढ़ा है। परंतु अच्छे भूमिगत जल की सीमित मात्रा है। हरियाणा प्रांत में भूमिगत जल औसतन 37% अच्छे, 8% सामान्य और 55 प्रतिशत खारे हैं। इस खारे पानी में 18% क्षारीय, 11% लवणीय तथा 26 % नमकीन-क्षारीय है।

पानी की जांच क्यों आवश्यक : नहर के पानी की उनुपलब्धता अथवा कमी होने के कारण नलकूप का पानी ही एक मात्र विकल्प बचता है। एकमात्र विकल्प होने के कारण इसकी गुणवत्ता से भी सम्झौता करना पड़ता है जिसके कारण भूमि तथा फसलों की पैदावार पर भी असर पड़ता है। परंतु समय पर पानी की जांच करवा कर तथा इसका समुचित प्रबंधन करके इससे होने वाले नुकसानों से या तो बचा जा सकता है या कम किया जा सकता है।

पानी के नमूना लेने की विधि : पानी का नमूना लेने के लिए अपने नलकूप को 2 से 3 घंटे चलायें तथा साफ बोतल में भरकर निकटवर्ती प्रयोगशाला में भेजा जा सकता है। सुविधानुसार बोतल प्लास्टिक या शीशे की ही प्रयोग में लाएँ तथा पानी की मात्रा कम से कम 500 मि.ली. हो। बोतल को साफ करने के लिए साबुन या सर्फ का प्रयोग कभी न करें।

खारे पानी का भूमि तथा फसलों पर असर:

- ❑ नमक जमा होने से ऊपरी सतह का कठोर होना
- ❑ मृदा में मृदा संचार की कमी होना
- ❑ फसलों का कम उगाव
- ❑ फसलों का देर से उगना
- ❑ फसल की बढ़वार में परेशानी होना
- ❑ फसल के पौधों तथा पट्टियों का आकार कम होना आदि

मृदा की संरचना तथा वर्षा का खारे पानी से होने वाले नुकसान पर प्रभाव : मृदा की संरचना खारे पानी से होने वाले नुकसान को कम या अधिक कर सकती है। रेतीली ज़मीन में नमक कम जमा होंगे इसलिए खारे पानी का प्रभाव भी कम होगा। इसी प्रकार चिकनी मिट्टी में नमक पौधों की जड़ के आस-पास रहने के कारण अधिक नुकसान होने की संभावना होती है। इसी प्रकार कम वर्षा वाले इलाकों में खारे पानी का प्रभाव अधिक वर्षा वाले इलाकों की अपेक्षा कम होता है।

बचाव के तरीके : खारे पानी से फसल की पैदावार पर प्रभाव को कम करने में फसलों का चुनाव अहम भूमिका निभाता है। संवेदनशीलता के हिसाब से फसलों को तीन श्रेणिओं में बांटा गया है:

लवण संवेदनशील	लवण अर्धसहनशील	लवण सहनशील
दाल वाली फसलें, मूंगफली, धान, नींबू जाति के पेड़, आम, पपीता इत्यादि।	बरसीम, ज्वार, मक्का, मटर, फालसा, तम्बाकू, पत्ता गोभी, ब्रोकोली, अनार, अमरूद।	जौ, गेहूं, सरसों, सैफ्लावर, पालक, बाजरा, बेर, फालसा।

(शेष पृष्ठ 5 पर)

फल के बागों में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली द्वारा पानी व खाद का प्रबंध

✍ रवि, प्रमोद शर्मा एवं अजित सांगवान
बागवानी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

किन्नू की फसल से किसान अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। किन्नू नींबू वर्गीय परिवार से संबंध रखता है। यह विश्वभर में प्रसिद्ध फलों में से एक है। भारत में यह फल आम तथा केले के बाद तीसरे स्थान पर आता है। उत्तर भारत में किन्नू फल काफी प्रसिद्ध है तथा इसकी खेती पंजाब व हरियाणा तथा राजस्थान में की जा रही है। क्योंकि इस प्रजाति के पौधे बारहमासी व सदाबहार होते हैं तो इन पौधों को पूरे साल खाद व पानी की आवश्यकता बनी रहती है। पौधे पानी के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पौधे पानी के द्वारा जरूरी पोषक तत्वों को अवशोषित कर पौधों के वृद्धि करने में सहायक हैं। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के माध्यम से हम न केवल खाद व पानी को बचा सकते हैं। बल्कि खाद व पानी की आवश्यकता अनुसार पौधे की जड़ों तक पहुंचाया जा सकता है। इस पद्धति से मैनपॉवर, पानी (35 से 40 प्रतिशत) तथा खाद (20 से 25 प्रतिशत) तक बचा सकते हैं। पानी व खाद की कमी से पौधों की पैदावार व गुणवत्ता में कमी आती है। यह पाया गया है कि नींबू वर्गीय पौधों में सूक्ष्म सिंचाई से खाद व पानी देने से पैदावार व फलों की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से खाद व पानी की मात्रा, पौधे की आयु, मिट्टी का प्रकार, वर्षा, पौधे से पौधे की दूरी तथा मौसम के अनुसार पानी की मात्रा तय की जाती है।

माह	पौधे की आयु के अनुसार पानी प्रति दिन प्रति पौधा				
	0-2	3-4	5-6	7-8	9 व अधिक
जनवरी	2	6	9	12	15
फरवरी	6	12	18	24	30
मार्च	9	18	27	36	45
अप्रैल	13	26	39	52	65
मई	16	32	48	64	80
जून	17	34	51	68	85
जुलाई	13	26	39	52	65
अगस्त	12	24	36	48	60
सितम्बर	9	22	33	44	55
अक्तूबर	6	16	24	32	40
नवम्बर	5	10	15	20	25
दिसम्बर	4	6	9	12	15

प्रति पौधा खाद की मात्रा

पौधे की आयु (वर्षों)	गोबर की सड़ी खाद किलोग्राम	यूरिया 46 प्रतिशत (ग्राम)	फास्फोरस (ग्राम)	सुपर फास्फेट (16% P_2O_5)
1-3	10-30	240-270	-	-
4-7	40-80	960-1680	220-385	1375-2400
8 व अधिक	100	1920	400	2750

अनार के बाग में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से खाद व पानी का प्रबंध

अनार का पौधा पूरे साल फूल व फल देता रहता है। फिर भी इस पौधे में कुछ समय के लिए फूल व फल आने की प्रक्रिया को रोका जाता है। जिससे कि हम पौधे को आराम देकर आगे आने वाली बहार से अच्छी पैदावार तथा फल की गुणवत्ता बढ़ा सकते हैं। अनार के पौधे में मुख्य तीन बहार आती हैं :

1. अम्बे बहार (जनवरी से फरवरी)
2. अस्ता बहार (सितंबर से अक्तूबर)
3. मृग बहार (जून से जूलाई)।

अलग-अलग जलवायु तथा वर्षा या मानसून के अनुसार फल बहार का चयन किया जाता है। जैसे जहां पर मानसून जून माह तथा सितंबर माह तक चलता है तो जून वाली बहार फायदेमंद होती है। उसी प्रकार मानसून अगस्त में हो तो अगस्त माह की बहार फायदेमंद होती है। उत्तर भारत में अम्बे बहार में आने वाली फसल ली जाती है। पानी के सीमित स्रोत होने के कारण इसका उचित रूप से प्रयोग सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के द्वारा पानी का लगातार प्रयोग करके हम अनार की अच्छी पैदावार ले सकते हैं। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली सर्वश्रेष्ठ सिंचाई की पद्धति है जिससे हम (43 प्रतिशत) पानी की बचत कर सकते हैं तथा (30 से 35 प्रतिशत) अनार की पैदावार को बढ़ा सकते हैं। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से हम मिट्टी में नमी की मात्रा बराबर कर सकते हैं। जिससे कि अनार के फल में फटने की समस्या का निदान किया जा सकता है। अनार में प्रतिदिन या एक दिन छोड़कर सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से सिंचाई कर सकते हैं। अच्छी व्यवस्था से हम पानी की उचित मात्रा किसी निश्चित समय पर पौधे की जड़ों के पास देकर सिंचाई की दक्षता बढ़ा सकते हैं। शुष्क व अर्ध शुष्क स्थानों पर अनार की खेती करने के लिए तथा इसकी पैदावार, फल का आकार, फल की गुणवत्ता, स्टोर की क्षमता तथा लंबे समय तक उपज में पानी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनार के पौधों में पानी की मात्रा इसकी आयु, मिट्टी का प्रकार, वर्षा तथा मौसम के अनुसार तय की जाती है। पानी की मात्रा 10 से 15 प्रतिशत मौसम के हिसाब कम या अधिक की जा सकती है।

माह	पौध की आयु के अनुसार पानी प्रति पौधा प्रति दिन (पौधे की आयु वर्षों में)				
	1	2	3	4	5 व अधिक
जनवरी	1.5	3	4	4	8
फरवरी	2.0	5	11	16	21
मार्च	2.5	7	20	28	34
अप्रैल	3.0	10	30	40	50
मई	3.1	11	30	40	50
जून	3.0	9	24	34	52
जुलाई	3.3	7	20	30	52
अगस्त	2.6	5	14	21	30
सितम्बर	1.9	4	10	15	25
अक्तूबर	2.0	4	10	15	20
नवम्बर	2.1	4	11	16	15
दिसम्बर	3.0	4	12	16	15

अनार के पौधे में पानी की मात्रा इस की आयु, मिट्टी का प्रकार, वर्षा तथा मौसम के अनुसार तय की जाती है।

अनार फल के फटने का कारण

1. यह समस्या कैल्शियम, बोरोन तथा पोटाश की कमी के कारण हो सकती है।
2. सिंचाई के समय में अधिक अंतर होना (15 से 20 दिन) यह पौधे की मिट्टी में नमी बराबर न होने के कारण भी हो सकता है। सूक्ष्म सिंचाई से हम मिट्टी में नमी बराबर कर सकते हैं।
3. यह दिन तथा रात के वातावरण में नमी की कमी के कारण भी हो सकता है। ●

खाद की मात्रा किलोग्राम/अवस्था चार वर्ष या अधिक आयु वाले पौधों के लिए

खाद के स्रोत	वनस्पति विकास 15 जनवरी से 15 फरवरी	फूल आना 16 फरवरी से 31 मार्च	फ्रूट सेट 1 अप्रैल से 30 अप्रैल	फ्रूट ग्रोथ 1 मई से 20 अगस्त	फल की परिवक्ता 21 अगस्त से 30 सितंबर	फल तोड़ने के बाद 1 अक्तूबर से 15 अक्तूबर
नाईट्रोजन 46:00:00	16	17	13	51	15	12
फास्फोरस 17:44:00	05	07	7	27	07	02
पोटाश 00:00:50	20	30	40	100	36	10

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं। क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है। क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

वर्षाकालीन मूंग की उन्नत कृषि क्रियाएं

✍ रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं जयलाल यादव
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत का विश्व में दलहन उत्पादन में विशेष स्थान है तो भी अपनी शाकाहारी जनसंख्या की दालों की मांग पूरी नहीं कर पाता है। दालों की बढ़ती मांग व आयात खर्च को देखते हुए दलहनी फसलों की खेती को महत्व तथा उत्पादकता बढ़ाने की आवश्यकता है। भारत में दलहनी फसलों की खेती 236.3 लाख हैक्टेयर में होती है तथा कुल पैदावार 147.6 लाख टन है। चना, मटर, मसर रबी मौसम की तथा अरहर, उड़द, मूंग खरीफ मौसम की प्रमुख दलहनी फसल है। हरियाणा प्रदेश में इन फसलों की खेती 1.75 लाख हैक्टेयर में होती है। मूंग की खेती ग्रीष्म व खरीफ दोनों मौसम में होती है। प्रदेश में धान गेहूं के क्षेत्रों में अधिकांशतया ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती होती है जबकि दक्षिण पश्चिम क्षेत्रों में अधिकांशतया वर्षाकालीन मूंग की खेती होती है। कम समय में पकने व भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने में सहायक होने के कारण मूंग की खेती की संसाधन संरक्षण में भूमिका होगी। वर्षाकालीन मूंग की अधिक पैदावार के लिये किसानों को निम्नलिखित उन्नत कृषि क्रियाएं अपनानी चाहिएं।

उन्नत किस्में : चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित वर्षाकालीन मूंग की किस्में 60-70 दिन में पक जाती हैं तथा अच्छी पैदावार देने में सक्षम हैं। प्रमुख उन्नत किस्मों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

मुस्कान (एम एच 96-1): इस किस्म का दाना आकार में मध्यम, चमकीला व हरे रंग का होता है। यह पीला पत्ता मोजैक वायरस रोग की अवरोधी किस्म है। इसकी फलियां एक साथ पकती हैं तथा औसत पैदावार 5.6 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सत्या : यह किस्म मूंग की अन्य किस्मों की तुलना में अधिक बढ़ती है। इसकी फलियां सीधी व दाने चमकदार हरे रंग के होते हैं। यह किस्म मूंग की मुख्य बीमारियों की अवरोधी है। यह लगभग 70 दिनों में पक जाती है तथा औसत पैदावार 6.5-7.0 क्विंटल प्रति एकड़ है।

एम एच 421: इस किस्म का दाना आकर्षक, चमकीला, हरा तथा मध्यम आकार का होता है। इसकी फलियां झड़ती नहीं हैं। यह किस्म मूंग की प्रमुख बीमारियों की अवरोधी है। इसकी औसत पैदावार 5.6-6.4 क्विंटल प्रति एकड़ है।

एम एच 318: यह किस्म 60 दिन में पक जाती है। यह पीला पत्ता मोजैक वायरस रोग की अवरोधी किस्म है। इसके दाने आकर्षक, चमकीले हरे तथा मध्यम आकार के होते हैं इसकी औसत पैदावार 5.5-6.4 क्विंटल प्रति एकड़ है।

बिजाई का समय : जुलाई के पहले सप्ताह में मानसून की वर्षा होने पर मूंग की बिजाई का उपयुक्त समय रहता है।

जीवाणु खादों से बीज का उपचार : मूंग की पैदावार बढ़ाने के लिये बीज का राइजोटीका व फास्फोटीका से उपचार करना चाहिए। ये टीके विश्वविद्यालय के माइक्रोबायलॉजी विभाग एवं किसान सेवा केन्द्र से प्राप्त किये जा सकते हैं। एक एकड़ के लिये 50-50 मि.ली. राइजोटीका तथा फास्फोटीका की आवश्यकता होती है। टीकों के प्रयोग के लिये एक कप पानी में 50 ग्राम गुड़ घोलकर बीज पर मिलाएं तथा इसके पश्चात टीकों का घोल बीज पर लगाएं। बीजों को हाथ से अच्छी तरह मिला लें तथा बिजाई से पहले छाया में सुखा लें।

बीज की मात्रा व बिजाई का तरीका : वर्षाकालीन मूंग की एक एकड़ में बिजाई के लिये 6 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बिजाई कतारों में करें। कतारों का फासला 30-45 सैं.मी. (1-1.5 फुट) तथा पौधों में 10 सैं.मी. रखें।

खाद : जीवाणु खादों से बीज उपचार के साथ-साथ बिजाई के समय 8 कि.ग्रा. नाईट्रोजन (17.5 कि.ग्रा. यूरिया) व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस (35 कि.ग्रा. डी ए पी) प्रति एकड़ के हिसाब से डालें।

निराई गोड़ाई : वर्षाकालीन मूंग की फसल में बैशाखी मूंग की तुलना में अधिक खरपतवार उगते हैं। खरपतवारों की रोकथाम के लिये दो बार निराई गोड़ाई करनी चाहिये। पहली निराई 20-25 दिन बाद तथा दूसरी 30-35 दिन बाद करनी चाहिये।

सिंचाई : वर्षाकालीन मूंग में आमतौर पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती परन्तु लम्बे समय तक वर्षा ना होने की स्थिति में फसल की सिंचाई करें।

हानिकारक कीड़ों की रोकथाम : मूंग की फसल में बालों वाली सूण्डी, पत्ती छेदक, हरा तेला और सफेद मक्खी हानि पहुंचाते हैं। बालों वाली सूण्डी तथा पत्ता छेदक के नियंत्रण के लिये 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस एल को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। हरा तेला और सफेद मक्खी की रोकथाम के लिये 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.लि. डाईमिथोएट (रोगोर 30 ई.सी.) को 250 लीटर पानी में मिलाकर 2-3 सप्ताह के अन्तर पर प्रति एकड़ पर छिड़काव करें।

बीमारियां व रोकथाम : पत्तों के धब्बों का रोग, पत्तों का जीवाणु रोग, जड़ गलन रोग तथा पीला मोजैक मूंग फसल की प्रमुख बीमारियां हैं। पत्तों के धब्बों व जीवाणु रोग की रोकथाम के लिये कॉपर ऑक्सीक्लाराईड 600-800 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। जड़ गलन की रोकथाम के लिए बिजाई से पहले बीज का 4 ग्राम थाइरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से सूखा बीज उपचार करें। पीला मोजैक की रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्में उगाएं। सफेद मक्खी इस रोग को फैलाती है। इसकी रोकथाम के लिये 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाईमेथोएट (रोगोर 30 ई.सी.) का 250 लीटर पानी में मिलाकर 2-3 सप्ताह के अन्तर पर प्रति एकड़ छिड़काव करें। रोगी पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें। ●

(पृष्ठ 3 का शेष)

जांच के आधार पर जल की विभिन्न श्रेणियां:

क्रं सं.	जल की किस्म	विद्युत चालकता (माइक्रो साइमन/ सैं.मी.)	सोडियम अधिशोषण अनुपात	अवशेष सोडियम कार्बोनेट (मि.ली. तुल्यांक/ली.)
1.	उत्तम जल	2000 से कम	10 से कम	2,5 से कम
2.	सामान्य जल	2000-4000	10 से कम	प्राय: नहीं
3.	खारे जल			
	क) नमकीन	4000 से अधिक	10 से कम	प्राय: नहीं
	ख) क्षारीय	4000 से कम	10 से अधिक	प्राय: 2.5 से अधिक
	ग) नमकीन एवं क्षारीय	4000 से अधिक	10 से अधिक	प्राय: नहीं

नोट : जांच के समय सिंचाई के पानी में नमक की मात्रा (विद्युत चालकता, सोडियम संयोग एवं अवशेष सोडियम कार्बोनेट (आर एस सी) के आधार पर ऊपरलिखित श्रेणिओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। जितना अधिक खारा पानी होगा उसकी विद्युत चालकता उतनी ही अधिक होगी। ●

पपीते को बचाएं – रोगों से

✍ आदित्य[1], जे.एन. भाटिया एवं फतेह सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरुक्षेत्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पपीते की व्यावसायिक बागवानी भारतवर्ष में विशेष रूप से बिहार, असम, उतर प्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश व दक्षिण भारत में की जा रही है। हरियाणा, पंजाब व अन्य प्रांतों में भी किसान इसकी खेती घरेलू बगीचों व बागवानी में सफलतापूर्वक कर रहे हैं। पपीते का पौधा एक से ढेड़ वर्ष में फल देना शुरु कर देता है और इसके फल पूरा वर्ष उपलब्ध रहते हैं। पपीते के फल औषधीय व पौष्टिक गुणों का भण्डार हैं तथा इससे अनेक स्वादिष्ट व गुणकारी उत्पाद बनाकर अच्छा पैसा कमाया जा सकता है। पपीते की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसकी खेती आम, अमरूद, नींबू, बेर व अन्य फलदार पौधों में जो जगह बीच में खाली पड़ी रहती है वहां पर सफलतापूर्वक की जा सकती है जिससे प्रति एकड़ मुनाफा और बढ़ जाता है। परन्तु इस फसल को कई प्रकार के रोग नुकसान पहुंचाते हैं जिनकी जानकारी होना किसान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में पपीते के मुख्य रोग व इनकी रोकथाम के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई है।

1. आर्द्रगलन (डेम्पिंग ऑफ) : यह एक फफूंद का व्यापक रोग है जो मुख्यतया पपीते की पनीरी में पाया जाता है जिससे पौधे अंकुरण से पहले या बाद में मर जाते हैं। रोग के लक्षण पौधे के तने पर ज़मीन से थोड़ा ऊपर दिखाई देते हैं। तना पानीनुमा बन जाता है व सिकुड़ जाता है तथा बाद में पूरा पौधा धराशायी हो जाता है। मृदाजनित होने के कारण बहुत से फफूंद मिट्टी में विद्यमान होते हैं तथा जब भी इनको अनुकूल तापमान व नमी उपलब्ध होती है वह इस रोग का कारण बनते हैं।

रोकथाम :

- ❑ रोग रोधी किस्मों का चयन करें।
- ❑ पनीरी हमेशा उठी हुई क्यारियों मे तैयार करें जिनमें पानी की निकासी का समुचित प्रबन्ध हो।
- ❑ बिजाई से पहले बीजों को बाविस्टिन या कैप्टान फफूंदनाशक 2:5 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से सूखा उपचार अवश्य करें।
- ❑ समय-समय पर कैप्टान या बाविस्टिन दवा का 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव पौधशाला में करते रहे।

2. कॉलर गलन व तना गलन (फुटरॉट ऑफ पपाया) : पपीते की फसल का यह एक खतरनाक रोग है। इस रोग का प्रकोप वर्षा ऋतु में अधिक होता है। इस रोग के विशिष्ट लक्षण तने की छाल पर जलसिक्त स्पंजी धब्बे पौधे के कॉलर भाग में बनने लगते हैं। तने का कॉलर भाग मृदा लाइन के ठीक ऊपर होता है। इस प्रकार के बने धब्बे बहुत शीघ्रता से वृद्धि करते हैं जिससे तने का निचला हिस्सा व जड़ें गलने लगती हैं तथा पूरा हिस्सा काला पड़ जाता है। रोगग्रस्त पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं व पौधों की बढ़वार रुक जाती है। फलों का आकार भी छोटा रह जाता है। रोग की उग्रता होने से कई बार पूरा पौधा सूख जाता है तथा हवा के हल्के झोंके से टूट भी जाता है।

रोकथाम :

- ❑ पपीते उन्हीं खेतों में लगायें जहां पानी की निकासी का समुचित प्रबन्ध हो।
- ❑ रोगग्रस्त पौधों को शुरु में ही निकालकर नष्ट कर दें।
- ❑ पपीते के इस रोग से बचने के लिए सिंचाई की रिंग विधि अपनायें ताकि पौधे के तने को पानी न लगे।
- ❑ पपीते की रोपाई करने के बाद (10-15 दिन के अन्तराल पर कैप्टान या बाविस्टिन या कॉपर आक्सीक्लोराईड का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर मोटे फुव्वारे से छिड़काव करते रहें।
- ❑ पपीते की फसल में हमेशा इस बात की सतर्कता बरतें कि पेड़ के निचले हिस्से में कोई चोट या घाव नहीं होना चाहिए।

3. काले धब्बों का रोग (एन्थ्रैक्नोज) : यह रोग पपीते की फसल व भण्डारण में रखे हुए पपीतों को भी नुकसान पहुंचाता है। रोग के प्रकोप से फल किसी भी अवस्था में प्रभावित हो सकते हैं। फलों पर यह जलसिक्त धब्बे अन्दर की तरफ धंसे हुए दिखाई पड़ते हैं। बाद में इन धब्बों के ऊपर कवक के गुलाबी रंग के बिन्दु भी साफ दिखाई पड़ते हैं। जबकि इन धब्बों के नीचे गुद्दा नरम व पानीनुमा बन जाता है जो पूरे फल को गला देता है। पौधे की पत्तियों पर छोटे-छोटे अनियमित आकार के जलसिक्त धब्बे बन जाते हैं जो आपस में मिलकर पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं तथा रोगग्रस्त पौधों के पत्ते किनारों से सड़ने लगते हैं। अधिक नमी व तापमान फसल में रोग को बढ़ावा देते हैं।

रोकथाम :

- ❑ रोगग्रस्त फलों को शुरू में ही नष्ट कर दें।
- ❑ पौधों पर कैप्टान या डाइथेन एम-45 (मैन्कोज़ेब) का 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर अवश्य करें।

4. सफेद चूर्णी रोग : इस रोग के लक्षण पौधे की पत्तियों व फलों पर दिखाई देते हैं। शुरू में छोटे-छोटे गहरे रंग के धब्बे बनते हैं जो कि बाद में सफेदनुमा बन जाते हैं। बाद में इन धब्बों का आकार बढ़ जाता है जो पूरी पत्ती पर छा जाते हैं। रोगग्रस्त पत्तियां हरिमाहीन व टेढ़ी-मेढ़ी होकर गिर जाती हैं। रोगग्रस्त फल आकार में छोटे व विकृत हो जाते हैं। यह रोग अधिक आर्द्रता (80-85%) व 22-26 डिग्री सैंटीग्रेड पर फैलता है।

रोकथाम :

- ❑ रोग के लक्षण दिखाई देते ही फसल में प्रोपीकोनाजोल या सल्फैक्स का 0.25% का घोल बनाकर छिड़काव करें तथा 10-15 दिन में दूसरा छिड़काव दोहरायें।

5. विषाणु रोग :

1. मोज़ैक - इस रोग का प्रकोप वैसे तो सभी उम्र के पौधों पर देखा जा सकता है परन्तु अधिक प्रकोप छोटी उम्र के पौधों पर ही होता है। शुरु में विषाणु रोग नई पत्तियों को प्रभावित करता है जिससे उनका आकार छोटा रह जाता है। पत्तियों पर मोजैक के लक्षण दिखाई देते हैं जो पत्ती के सम्पूर्ण पीले -हरे पटल पर फफोलेनुमा हरे ऊतकों पर बिखरे रहते हैं। माहू कीट द्वारा यह रोग एक पौधे से दूसरे पौधे में फैलता है। रोगग्रस्त पौधे बोने रह जाते हैं जिन पर फल लम्बे व छोटे रहते हैं। अधिक तापमान पर (52 डिग्री सैंटीग्रेड) विषाणु की सक्रियता घट जाती है।

2. पपीते का पत्ती मोड़न विषाणु रोग - इस रोग से पौधे की पत्तियां छोटी व झुर्रीदार हो जाती हैं। पत्तियों में सबसे मुख्य लक्षण उनका अन्दर

(शेष पृष्ठ 8 पर)

[1]स्नातकोत्तर छात्र (पादप रोग), चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

जल संरक्षण और वर्षा जल संचयन के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण

✍ **सुषमा बिष्ट[1], एच. के. यादव एवं धर्मेंद्र सिंह[1]**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जल संरक्षण कुशलता से पानी का उपयोग करने का अभ्यास है जिसमें सभी नीतियों, रणनीतियों और गतिविधियों में ताज़े पानी के प्राकृतिक संसाधन का निरंतर प्रबंधन करना, जलमंडल की रक्षा करना और वर्तमान और भविष्य की मानवीय मांग को पूरा करना शामिल है। जल संरक्षण महत्वपूर्ण है क्योंकि ताज़ा स्वच्छ जल एक सीमित संसाधन है, साथ ही यह महंगा भी है।

घर के आसपास पानी की बचत के लिए :

1. अपने टॉयलेट के पानी के टैंक पर एक ईंट रखें, जो पानी के कुछ हिस्सों को विस्थापित कर देगा क्योंकि टॉयलेट से एक दिन में औसतन 20 गैलन पानी बहता है।
2. कपड़े धोने के उचित भार के लिए अपनी मशीन पर सेटिंग्स को समायोजित करके पानी बचाएं।
3. पौधों को बुद्धिमानी से या तो सुबह जल्दी या शाम को देर से पानी दें, इस समय पानी तेज़ धूप से तुरंत वाष्पित नहीं होता है।
4. कम प्रवाह वाले शॉवरहेड का प्रयोग करें।
5. शट-ऑफ नोज़ल के साथ सभी होसेस को लैस करें, जिससे नली के रिसाव को रोका जा सके।

व्यवसायों के लिए पानी की बचत करने वाली तकनीक : इसमें वाटरलेस कार वॉश और यूरिनल, अस्पतालों और स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं में उपयोग के लिए वाटर-सेविंग स्टीम स्टेरलाइज़र, वाटर टू वॉटर हीट एक्सचेंजर्स, वर्षा जल संचयन आदि शामिल हैं।

आज, दुनिया का कोई भी देश भारत की तरह अपनी पानी की आवश्यकतों को बनाए रखने के लिए भूजल पर निर्भर नहीं है। देश लगभग एक चौथाई वैश्विक भूजल का उपभोग करता है, जो संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के संयुक्त दो देशों से अधिक है।

एक्वीफर्स का लापरवाह दोहन भी जल संकट के प्रति भारत के गुरुत्वाकर्षण का एक कारण है। रिमोट सेंसिंग और भौगोलिक सूचना प्रणाली तकनीकों द्वारा भूजल संसाधन मानचित्रण (जिसे अक्सर एक्वीफर मैपिंग कहा जाता है) को भूजल दोहन के लिए संभावित क्षेत्रों को वितरित करने और उपयोगकर्ता विभागों को अधिकतम संभव निष्कर्षण की सिफारिश करने के लिए एक्वीफर्स की एक समग्र समझ, इसके स्थायी उपयोग के तरीके प्रदान करते हैं।

फसल विविधीकरण द्वारा जल संरक्षण से तात्पर्य है कृषि क्षेत्र में कृषि उत्पादन के लिए नई फसलों या फसल प्रणालियों को शामिल करना, पूरक विपणन अवसरों के साथ मूल्यवर्धित फसलों से अलग रिटर्न पर ध्यान देना और किसान डेयरी, मुर्गीपालन जैसी संबद्ध गतिविधियों और आय को बढ़ावा देने के लिए खाद्य प्रसंस्करण के लिए भी जा सकते हैं। इससे बिजली की खपत कम होगी और मृदा स्वास्थ्य में भी सुधार होगा।

[1]हरियाणा स्पेस एप्लीकेशन सेंटर (हरसैक), चौ.च.सिं.ह.कृ.वि. परिसर, हिसार।

कृषि में कुछ फसलें जैसे कुछ राज्यों में चावल को अपनाने से पानी की कमी हो जाती है, बिजली की आवश्यकता, मिट्टी और मानव स्वास्थ्य में वृद्धि, भविष्य की समस्याओं का कारण बनता है, जैसे कि जल स्तर की कमी, भूजल प्रदूषण, गेहूं की वैकल्पिक फसल पर बुरा प्रभाव जैसे गेहूं में देरी के कारण होता है, परिपक्वता के समय टर्मिनल गर्मी का खतरा बढ़ रहा है और गेहूं की पैदावार कम हो रही है जिससे किसानों को सीधे नुकसान हो रहा है।

आइसोटोप हाइड्रोलॉजी तकनीक प्रमुख वैज्ञानिक तरीकों में से एक है जो ताज़े पानी की आवाजाही का पता लगाने और उपलब्ध भूजल की आयु का आकलन करने के लिए उपयोग करते हैं। यह विभिन्न आइसोटोपों के प्राकृतिक 'टैगिंग' जल वहन पर आधारित है, जिसका उपयोग ज़मीन के ऊपर और नीचे के जल के स्रोत, आयु, गति और अंत:क्रियाओं को निर्धारित करने के लिए किया जा सकता है। जल विज्ञान मानचित्र के रूप में प्राप्त और देखे गए डेटा विशेषज्ञों को स्थायी संसाधन प्रबंधन पर साक्ष्य-आधारित निर्णय लेने में सक्षम बनाते हैं।

वर्षा जल संचयन (आरडब्ल्यूएच) बारिश के पानी का संग्रह और

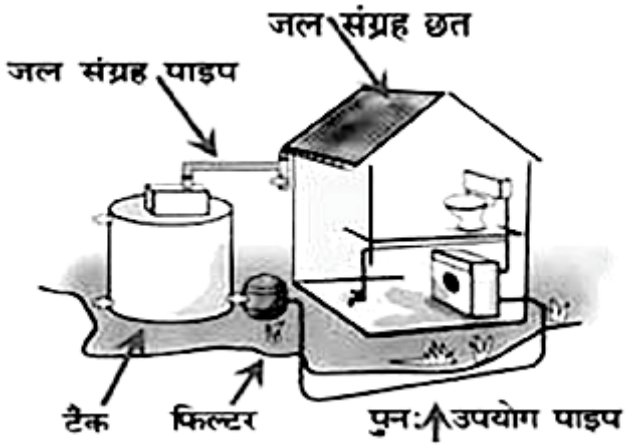

भंडारण है जो छत के सबसे ऊपर, पार्कों, सड़कों, खुले मैदानों आदि से चलता है। इस पानी को बंद करके या तो भूजल में संग्रहीत या रिचार्ज किया जा सकता है। एकत्रित पानी को एक गहरे गड्ढे (कुएं, शाफ्ट, या बोरहोल), जलभृत, परकोटे के साथ जलाशय में पुन:निर्देशित किया जाता है। इसके उपयोग में बगीचों, पशुओं के लिए पानी, सिंचाई, उचित उपचार के साथ घरेलू उपयोग, घरों के लिए इंडोर हीटिंग आदि शामिल हैं। कटे हुए पानी का उपयोग पीने के पानी, लंबे समय तक भंडारण, और भूजल जैसे अन्य प्रयोजनों के लिए भी किया जा सकता है।

वर्षा जल संचयन प्रणाली में निम्नलिखित घटक होते हैं :

1. कैचमेंट, जहां से पानी को पकड़ा जाता है और संग्रहीत या रिचार्ज किया जाता है,
2. कनवेक्शन सिस्टम जो कैचमेंट से स्टोरेज या रिचार्ज ज़ोन में कटे हुए पानी को ले जाता है,
3. पहला फ्लश जो बारिश के पहले स्पेल को बहाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है,
4. प्रदूषकों को हटाने के लिए उपयोग किया जाने वाला फिल्टर,
5. भंडारण टैंक और विभिन्न पुनर्भरण संरचनाएं।

आरडब्ल्यूएच आमतौर पर उपयोगकर्ता द्वारा वित्तपोषित घरों के लिए पानी की स्व-आपूर्ति की सबसे सरल और सबसे पुरानी विधि है।

रूफटॉप रेन वाटर हार्वेस्टिंग के तरीके:

1. प्रत्यक्ष उपयोग का भंडारण - इस पद्धति में भवन की छत से एकत्रित वर्षा जल को भंडारण टैंक में बदल दिया जाता है। भंडारण टैंक को पानी की आवश्यकताओं, वर्षा और जलग्रहण उपलब्धता के अनुसार डिज़ाइन किया जाता है। यह सलाह दी जाती है कि प्रत्येक टैंक में प्रवाह प्रणाली पर अतिरिक्त पानी होना चाहिए। अतिरिक्त पानी को रीचार्ज सिस्टम में डायवर्ट किया जा सकता है। भंडारण टैंक से पानी का उपयोग माध्यमिक उद्देश्यों जैसे कि धुलाई और बागवानी आदि के लिए किया जा सकता है। यह वर्षा जल संचयन का सबसे प्रभावी तरीका है।

2. भूजल जलवाही स्तर का पुनर्भरण - भूजल जलभृत को विभिन्न

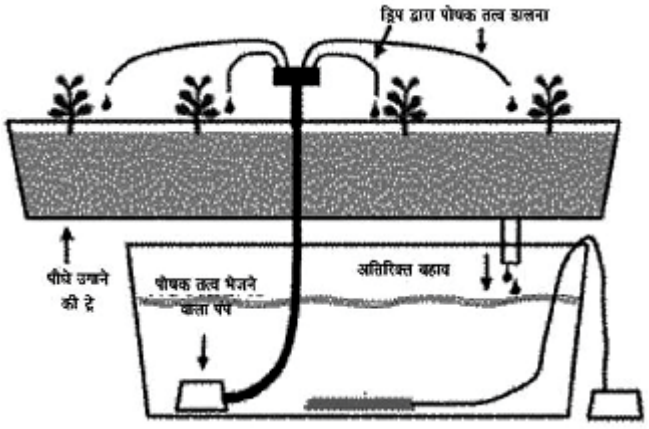

प्रकार की संरचनाओं द्वारा रिचार्ज किया जा सकता है ताकि सतह से दूर जाने के बजाय ज़मीन में बरसाती पानी की निकासी सुनिश्चित की जा सके। आमतौर पर इस्तेमाल होने वाले रिचार्जिंग तरीके बोरवेल, खोदे गए कुओं, गड्ढों, शाफ्ट, खाइयों और परकोलेशन टैंकों की रिचार्जिंग हैं।

3. बोरवेलों का पुनर्चक्रण - भवन की छत से एकत्र वर्षा जल को जल निकासी के माध्यम से बस्ती या निस्पंदन टैंक में भेजा जाता है। निपटान के बाद फिल्टर किए गए पानी को गहरे जलभरों को रिचार्ज करने के लिए बोरवेलों में ले जाया जाता है। पुनर्निर्मित बोरवेल का उपयोग रिचार्ज के लिए भी किया जा सकता है।

निपटान टैंक या निस्पंदन टैंक की इष्टतम क्षमता को कैचमेंट के क्षेत्र, वर्षा की तीव्रता और पुनर्भरण दर के आधार पर डिज़ाइन किया जा सकता है। रिचार्ज करते समय, फ्लोटिंग मैटर और गाद का प्रवेश प्रतिबंधित होना चाहिए क्योंकि यह रिचार्ज संरचना को रोक सकता है। संदूषण से बचने के लिए वर्षा विभाजक के माध्यम से पहले एक या दो शावर को प्रवाहित किया जाना चाहिए।

4. रिचार्ज पिट्स - रिचार्ज गड्ढे किसी भी आकार के आयताकार, वर्गाकार या गोलाकार के छोटे गड्ढे होते हैं, जिन्हें नियमित अंतराल पर ईंट या पत्थर की चिनाई वाली दीवार के साथ अनुबंधित किया जाता है। गड्ढे के ऊपर छिद्रित कवर के साथ कवर किया जा सकता है। गड्ढे के नीचे फिल्टर मीडिया से भरा होना चाहिए।

गड्ढे की क्षमता को जलग्रहण क्षेत्र, वर्षा की तीव्रता और मिट्टी की पुनर्भरण दर के आधार पर डिज़ाइन किया जा सकता है। आमतौर पर गड्ढे के आयाम 1 से 2 मीटर की चौड़ाई और 2 से 3 मीटर गहरे हो सकते हैं जो कि व्यापक स्तर की गहराई पर निर्भर करते हैं। ये गड्ढे उथले एक्वीफर्स, और छोटे घरों को रिचार्ज करने के लिए उपयुक्त हैं।

5. सोखवे या रिचार्ज शाफ्ट - दूर सोख या रिचार्ज शाफ्ट प्रदान किए जाते हैं जहां मिट्टी की ऊपरी परत जलोढ़ या कम विकृत होती है। ये 30 सेमी व्यास वाले, 10 से 15 मीटर तक गहरे छेद हैं और गहराई पिछली परत की गहराई पर निर्भर करती है। ऊर्ध्वाधर पक्षों के पतन को रोकने के लिए बोर को स्लोटेड या छिद्रित पीवीसी या एमएस पाइप के साथ पंक्तिबद्ध किया जाना चाहिए।

सोख दूर के शीर्ष पर फिल्टर से पहले अपवाह को बनाए रखने के लिए नाबदान बनाया गया है। नाबदान फिल्टर मीडिया से भरा होना चाहिए।

6. खोदे गए कुओं का पुनर्भरण - डग वेल का उपयोग रिचार्ज स्ट्रक्चर के रूप में किया जा सकता है। छत से बारिश का पानी छानने के बिस्तर के माध्यम से पारित करने के बाद कुओं को खोदने के लिए मोड़ दिया जाता है। पुनर्भरण दर को बढ़ाने के लिए नियमित रूप से खोदे गए कुओं की सफाई और अलसाईकरण किया जाना चाहिए। बोरिंग रिचार्जिंग के लिए सुझाई गई निस्पंदन विधि का उपयोग किया जा सकता है।

7. परकोलेशन टैंक - परकोलेशन टैंक कृत्रिम रूप से बनाया गया सतही जल निकाय है, जो भूजल को रिचार्ज करने के लिए पर्याप्त परकोलेशन की सुविधा के लिए पर्याप्त पारगम्यता के साथ एक भूमि क्षेत्र को जलमग्न करता है। इन्हें बड़े परिसरों में बनाया जा सकता है, जहां ज़मीन उपलब्ध है और स्थलाकृति उपयुक्त है।

सरफेस रनऑफ और रूफ टॉप वाटर को इस टैंक में डायवर्ट किया जा सकता है। संग्रहीत पानी का उपयोग सीधे बागवानी और कच्चे उपयोग के लिए किया जा सकता है। शहरी क्षेत्र के बागानों, खुले स्थानों और सड़क के किनारे ग्रीनबेलों में परकोलेशन टैंक बनाए जाने चाहिएं। ●

(पृष्ठ 6 का शेष)

की ओर मुड़कर कप जैसी संरचना बनाकर नीचे की ओर झुकना एवं इनकी शिराओं का पीला पड़ जाना है। पत्तियां मोटी हो जाती हैं। बाद में यह पत्तियां सूख कर गिर जाती हैं। फल बहुत कम व छोटे लगते हैं। रोगग्रस्त पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

रोकथाम :

- ❑ विषाणु रोग से ग्रस्त पौधों को खेत से तुरन्त निकाल देना चाहिए ताकि स्वस्थ पौधों मे यह रोग न फैल सके।
- ❑ कपास व भिण्डी की फसल के नज़दीक पपीते की काश्त नहीं करनी चाहिए।

रोग के आक्रमण से पूर्व सफेद मक्खी एवं माहू की रोकथाम के लिए मैलाथियॉन 50 ई.सी. (0.1 प्रतिशत) 100 मि.ली. दवा का 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। ●

एक कदम स्वच्छता की ओर

वर्तमान परिपेक्ष्य में : आहार के रूप में – गेहूं

✍ **विरेन्द्र दलाल, राजेश कथवाल एवं आर. के. राणा**
वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गेहूं संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और एशिया की प्रमुख फसल है जो कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आवश्यक विटामिन और खनिज (विटामिन-बी, विटामिन-ई, कैल्शियम और आयरन) के साथ-साथ फाइबर से भी भरपूर है। इस फसल में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा बनने वाला प्रथम उत्पाद तीन कार्बन का बना होता है जिसका नाम 3-फोस्फोग्लीसरेट है, जो उष्णकटिबंधीय और उप उष्णकटिबंधीय परिस्थितियों के अच्छी तरह से अनुकूल नहीं है। यह स्व-परागण वाली फसल है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार गेहूं का वैश्विक स्तर पर 2008 से 2012 तक का 5 वर्षों का कुल औसत उत्पादन 680 मिलियन टन है। इस कारण यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य फसलों में तीसरी महत्वपूर्ण फसल है।

गेहूं में ग्लूटन होने के कारण गेहूं से कई प्रकार के खाद्य उत्पादों को आसानी से बनाया जा सकता है जैसे ब्रैड, नूडल व पास्ता जिन्हें पश्चिमी जीवन-शैली में मुख्य रूप से अपनाया गया है। भारत में भी वर्तमान में जीवन शैली व दिनचर्या में बदलाव आने के कारण इन उत्पादों को आहार में स्थान में मिल गया है। भारत में गेहूं से प्रतिदिन में आहार से प्राप्त होने वाली कैलोरी का प्रतिशत् 1961 में 11.85 प्रतिशत् था जो 2011 में बढ़कर 20.41 प्रतिशत हो गया है। इसका कारण शहरी विकास है जिससे गेहूं की खपत बढ़ती जा रही है।

गेहूं मुख्य रूप से दक्षिण-पूर्व टर्की में 'इनकन' के नाम से जाने वाली घास थी, जिसके बारे में हमें लगभग दस हज़ार साल बाद पता चला और यदि हम भारत के बारे में बात करते हैं, तो 6500 ईसा पूर्व में गेहूं का परिचय दिया गया और आज चीन के बाद भारत दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। भारत में गेहूं को गुणवत्ता के आधार पर दो भागों में बांटा गया है जैसे मृदु गेहूं व कठोर गेहूं । मृदु गेहूं : जिसको हम ट्रिटीकम एसटीवीम प्रजाति के नाम से जानते हैं। इसके बीज में मुख्य 3 घटक होते हैं।

1. एंडोस्पर्म 2. जर्म 3. ब्रान

गेहूं के उपरोक्त मुख्य तीन घटकों में एंडोस्पर्म 80 प्रतिशत होता है जिसमें कार्बोहाइड्रेट और स्टार्च मुख्य रूप से पाए जाते हैं, जिनसे हमें बहुत अधिक कैलोरी मिलती हैं। इसके विपरीत गेहूं के प्रति असहनशीलता होने पर पेट का दर्द, बिना वजह किसी बात की चिंता होना, सिरदर्द, जोड़ों का दर्द, गैस, अनीमिया, पेट फूलना, दमा, रिकैट्स, त्वचा में जलन, डायरिया, मासिकधर्म में समस्या, शरीर का कमज़ोर हो जाना, कभी-कभी वज़न का बढ़ना या घट जाना जैसे लक्षण सामान्य हैं।

गेहूं में पाए जाने वाल प्रोटीन मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं :

1. प्रोलअमाईन्स 2. नॉनप्रोलअमाईन्स

नॉनप्रोलअमाईन्स दो तरह के होते हैं अल्बुमाइन व ग्लोबुलाईन। अल्बुमाईन पानी में घूलनशील हैं व ग्लोबुलाईन नमक में घुलनशील है। परंतु प्रोलअमाईन के उपघटक गलीएडिन व ग्लूटैनिन जोकि पैप्टाईड में टूटते हैं क्योंकि इनमें अधिक मात्रा में प्रोलिन अमिनो एसिड व ग्लूटामाईन अमिनो एसिड होते हैं। ये पैप्टाईड छोटी आंत के लैमिनाप्रोप्रिया में जाकर अपिथिलियल सैल को नुक्सान पहुंचाते हैं जिसके परिणामस्वरूप विलि का सतह क्षेत्र कम हो जाता है जिससे छोटी आंत भोजन से बहुत कम मात्रा में पोषक तत्व ग्रहण कर पाती है और परिणामस्वरूप हमें ऊपर लिखित लक्षण महसूस करते हैं जिसे हम सिलिक बीमारी व ग्लूटन असहनशीलता का नाम दे सकते हैं।

गेहूं में प्रोटीन के अलावा कॉर्बोहाइड्रेट भी होते हैं जिन्हें जल अपघटन द्वारा शर्करा में परिवर्तित किया जा सकता है ये कॉर्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से मिलकर बनते हैं। कॉर्बोहाइड्रेट ऊर्जा के बहुत सस्ते स्रोत हैं। एक ग्राम कॉर्बोहाइड्रेट से 4 कैलोरी मिलती हैं।

स्टार्च जोकि कॉर्बोहाइड्रेट का एक रूप है जो हम गेहूं से प्राप्त करते हैं उसका कुछ हिस्सा छोटी आंत में नहीं पच पाता जिसे हम रजिस्टेंट स्टार्च कहते हैं। यह रजिस्टेंट स्टार्च हमारी बड़ी आंत में आकर इकट्ठा होने लगता है और कुछ खास परिस्थितियों में यह रजिस्टेंट स्टार्च फैटीएसिड में टूटने लगता है जिसकी वजह से हमारी बड़ी आंत में पी.एच. की मात्रा 3 तक चली जाती है जिससे बड़ी आंत में अलसर की संभावना बढ़ जाती है जोकि कॉलन कैंसर का कारण भी बन सकती है।

ग्लूटन और रजिस्टेंट स्टार्च जोकि विशेष परिस्थितियों में हमारे लिए हानिकारक हो सकते हैं, के पीछे काफी हद तक हमारी जीवनशैली उत्तरदायी है।

स्वदेशी गेहूं जो भारत में परंपरागत रूप से उगाई जाती थी जैसे पंजाब 591, पंजाब 518, सी 218, सी 281, सी 306 गेहूं की किस्म जिनमें ग्लूटन नरम व कम मात्रा में पाया जाता था जोकि हमारे शरीर को काफी हद तक बीमारियों से दूर रखता था। इसके बाद 1975 में स्वदेशी गेहूं और मैक्सीकन गेहूं की संकरण से डबल्यू एच 147 गेहूं की किस्म हरित क्रांति के समय तैयार की गई । यह किस्म पैदावार अधिक होने के साथ-साथ खाने में भी काफी स्वादिष्ट थी।

अगर हम यहां पर स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से बात करें तो ये जितनी भी वर्ण-संकर गेहूं की किस्म हैं जो हरित क्रांति के बाद आई इनमें ग्लूटन की मात्रा हमारी परंपरागत गेहूं से अधिक है और इसके साथ ग्लूटन भी तुलनात्मक रूप से सख्त/मुश्किल से पचाया जा सके। जिसका आम लोगों को कोई ज्ञान नहीं था। इस वजह से आज लोगों को सिलिएक बीमारी/ग्लूटन असहनशीलता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन तरह की समस्याओं से निजात पाने के लिए हमें ऐसा अनाज उपयोग में लाना चाहिए जोकि प्राकृतिक रूप से स्वदेशी हो जैसे बाजरा, मक्का, जौ, देशी गेहूं/सी-306, चावल, दालों में चना, मूंग, अरहर व तिलहन फसलों में सरसों, तिल व मूंगफली हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होती हैं।

रजिस्टेंट स्टार्च की बात करें तो हमें बारिक छने हुए आटे (एंडोस्पर्म) को अकेले न लेकर गेहूं का चोकर भी हमें हमारे भोजन में शामिल करना चाहिए क्योंकि गेहूं का चोकर इनसोल्यूबल नॉन स्टार्च पॉलीस्क्राइड्स का प्रचुर स्रोत है जो रजिस्टेंट स्टार्च को कोलन में किण्वन वाली जगह से दूर लेकर जाता है और परिणामस्वरूप डिस्टल क्लॉनिक ल्यूमिनल के वातावरण में अनुकूलित बदलाव लाता है। जोकि बहुत अधिक ट्यूमर संभावित जगह होती है। इस प्रकार नॉन स्टार्च पॉलीस्क्राइड्स और रजिस्टेंट स्टार्च मिलकर ब्यूटेरायट (जोकि रजिस्टेंट स्टार्च का आंत संबंधी जीवाणु किण्वन अंतिम उत्पाद होता है) बनाता है। ब्यूटेरायट, क्लॉनिक

(शेष पृष्ठ 10 पर)

[1]रामधन सिंह बीज फार्म, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

[2]आनुवांशिकी व पादप प्रजनन विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

खुम्ब : पौष्टिकता एवं औषधीय गुण

✍ आदित्य[1], जे.एन. भाटिया एवं फतेह सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरुक्षेत्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खुम्ब एक स्वादिष्ट व पौष्टिक उत्तम आहार है जिसमें प्रोटीन, खनिज लवण, विटामिन व सभी आवश्यक अमिनोअम्ल प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। खुम्ब की अपनी एक मधुर खुशबु होती है जिसके कारण इसे खाने में अधिक पसन्द किया जाता है। प्रारम्भ में तो लोग खुम्बों को केवल इनकी स्वादिष्टता के कारण ही खाते थे किन्तु इनमें पाये जाने वाले पौष्टिक तत्वों तथा दवाइयों में उपयोगिता के कारण इसे अब एक गुणकारी आहार के रूप में जाना जाने लगा है। खुम्ब कम कैलोरी (43 कैलोरी प्रति 100 ग्राम ताज़ा खुम्ब), अधिक रेशा व प्रोटीन युक्त आहार है। खुम्बों में पाये जाने वाले प्रोटीन से शाकाहारी लोग अपने भोजन में प्रोटीन की कमी को पूरा कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) ने भी विकासशील देशों की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खुम्ब को पूरक आहार का दर्जा दिया है।

मशरूम का पोषण मूल्य

प्रति 100 ग्राम ताज़ा खाद्य मशरूम में निहित पोषण मूल्य : ऊर्जा - 43 कैलोरी; कार्बोहाइड्रेटस - 4.3 ग्रा.; वसा- 0.1 ग्रा.; प्रोटीन -2.5 ग्रा.; रेशा - 0.8 ग्रा.

विटामिन्स : थायमिन बी1- 0.1 मि.ग्रा.; राइबोफ्लेविन बी2 - 0.5 मि.ग्रा.; नियासिन बी3 - 3.8 मि.ग्रा.; पैटोथेनिक अम्ल बी5 - 1.5 मि. ग्रा.; विटामिन बी6 - 0.11 मि.ग्रा.; फोलेट बी9 - 25 माइक्रो ग्रा.; विटामिन डी - 3 आई.यू.

खनिज : कैल्शियम - 18 मि.ग्रा.; आयरन - 0.4 मि.ग्रा.; मैग्नीशियम - 9 मि.ग्रा.; मैंगनीज़ - 0.142 मि.ग्रा.; फास्फोरस - 120 मि.ग्रा.; पोटाशियम - 448 मि.ग्रा.; सोडियम - 6 मि.ग्रा.; ज़िंक - 1.1 मि.ग्रा.

अन्य घटक : सेलेनियम -26 माइक्रो ग्रा.; कॉपर - 0.5 मि.ग्रा.; नमी - 90 प्रतिशत

खुम्बों में प्रोटीन की मात्रा सब्जियों व पशुओं के प्रोटीन से अधिक व अधिक पाचनशील होती है। इनमें पायी जाने वाली प्रोटीन उच्च कोटि की होती है क्योंकि इसमें अधिकतर सभी आवश्यक अमिनो अम्ल जिनमें लाइसिन व ट्रिपटोफेन (500 मि.ग्रा./ग्रा.) पाये जाते हैं (जो कि एक अण्डे में पाये जाने वाले तत्वों से भी कहीं अधिक होते हैं। उत्तम प्रोटीन होने के कारण कैल्शियम और फास्फोरस का भी उचित शोषण होता है। खुम्बों में प्रोटीन की मात्रा सब्जियों व फलों की अपेक्षा 20-35 प्रतिशत, चावल से 7.3 प्रतिशत, गेहूं से 17.2 प्रतिशत, दूध से 15.2 प्रतिशत, बन्दगोभी से 2 गुणा, सन्तरे से चार गुणा व सेब से 12 गुणा अधिक पाई जाती है।

खुम्ब में कम कैलोरी, कम वसा, कम स्टार्च, कम कोलेस्ट्रोल व अधिक सोडियम-पोटाशियम अनुपात के कारण खुम्ब का आहार उन व्यक्तियों के लिए वरदान स्वरूप है जो मोटापे, अधिक तनाव व हृदय रोग से पीड़ित रहते हैं। खुम्ब में भस्म व रेशा उपलब्ध होने के कारण पेट का अम्लीयपन व कब्ज़ आदि की भी शिकायत दूर रहती है। स्वाद और बनावट में अंतर के बावजूद खुम्ब विटामिन बी, सी, डी व के तथा महत्वपूर्ण खनिजों जैसे कैल्शियम, लोहा, ज़िंक, मैग्निशियम, सेलेनियम, सोडियम, मैंग्नीज़, कॉपर, फास्फोरस व पोटाशियम तत्वों का एक बड़ा स्रोत है। यह मानव शरीर को बड़ी संख्या में लाभ देते हैं।

खुम्ब में बहुत से बहुमूल्य विटामिन जैसे विटामीन बी1 (थायमिन), बी2 (राइबोफ्लेविन), बी3 (नायसिन), बी5 (पैंटोथेनिक अम्ल), बी6 बी9 (फोलेट) भी उपलब्ध हैं जो मानव शरीर की विभिन्न क्रियाओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। खुम्ब में विटामिन 'बी' की अधिकता होने के कारण बेरी-बेरी रोग से पीड़ित लोगों के लिए यह गुणकारी है। विटामिन 'सी' की अधिकता होने के कारण यह बच्चों के दांतों के लिए विशेषकर लाभदायक है। इसे नियासिन व पैंटोथेनिक अम्ल पर्याप्त मात्रा में होने के कारण यह चर्म रोग तथा हाथ-पैरों में जलन को समाप्त करने में सहायक है। इसके इलावा खुम्ब में फोलिक अम्ल व लौह तत्व भी पाये जाते हैं जो विशेषकर सब्जियों व फलों में कम पाये जाते हैं। यह तत्व गर्भ अवस्था में तथा दूध पिलाने वाली औरतों में खून की कमी से होने वाले रोगों को कम करने में सहायक पाये गये हैं।

खुम्बों में जीवाणु रोधी, फफूंद रोधी व रोगाणु रोधी गुण भी विद्यमान हैं जो हार्पिस, दाद, हैपेटाइटिस और अन्य विकारों को ठीक करने के लिए जाने जाते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न खुम्बों में एंटी आक्सीडेंट (प्रति उपचायक) घटक जैसे सेलिनियम, विटामिन सी, कोलीन, गलयुथियोन, दूरगोथियोनिन की भी पुष्टि की है जो कि फेफड़े, छाती व पराजित की ग्रंथी की कैंसर को रोकने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

ज़हरीली व खाने योग्य दोनों ही तरह के खुम्बों में औषधीय गुण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। चीन व जापान जैसे विकसित देश तो इन खुम्बों से टॉनिक, दवाइयां व साज-सज्जा में उपयोग करके करोड़ों-अरबों रुपयों की विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहे हैं। अकेला जापान शिटाके खुम्ब (*लेन्टीनस इडोडस*) जिसमें लेन्टीनन तत्व पाया जाता है जिसके कैप्सूल बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में 70 करोड़ डॉलर की विदेशी मुद्रा प्रतिवर्ष कमा रहा है। अमेनिटा प्रजाति ज़हरीली खुम्ब में मस्कीनोल व इबोटेनिक अम्ल पाया जाता है जिसका प्रयोग मिरगी, दिमागी बीमारियों व विभिन्न तरह के तन्तुओं के इलाज में किया जाता है। इसी प्रकार अन्य औषधीय युक्त खुम्बों में शिटाके (*लेन्टीनस इंडोडस*), मिटाके, कीड़ा जड़ी (*कोरडीसेपस मिलिटेरिस/साइनेन्सीज, कोरियोलस वेरीकलर* व *कलेविटा गिगांनटिया* आदि खुम्ब है जिनसे कैंसर, ट्यूमर, एड्स, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, एच.आई.वी., वायरस, इन्फलुन्जा, पोलियो वायरस व कुपोषण हेतु अनेक प्रकार की औषधियां तैयार की जा रही हैं जिनमें इन रोगों से लड़ने की क्षमता पाई गई है। ●

[1]स्नातकोतर छात्र (पादप रोग), चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

(पृष्ठ 9 का शेष)

फिजियोलॉजी पर हितकारी प्रभावों को बढ़ावा देता है जैसे- बड़ी आंत में अभिकारक(सबस्ट्रेट) को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेकर जाना, गट लाइनिंग को सुरक्षा प्रदान करना, मोटापे के खतरे को कम करना, कोलन कैंसर की संभावनाओं को कम करना, म्यूकस उत्पादन को बढ़ावा देना और एपिथीलियम कोशिकाओं को मज़बूती से संयोजन देता है।

इस प्रकार हम अपने दैनिक आहार में गेहूं को शामिल करते समय उपरोक्त बातों का ध्यान रखकर ग्लूटन व रजिस्टैंट स्टार्च के प्रति सचेत हो सकते हैं। इसके साथ वैज्ञानिक स्तर पर गेहूं की गुणवत्ता मुख्य रूप से प्रोटीन में प्रोलअमाईन्स पर शोध की आवश्यकता है। ●

बी.टी. कपास : कीट एवं समन्वित प्रबंधन

✍ **चित्रलेखा, एन. के. यादव एवं नवीश कुमार कम्बोज**
कपास अनुसंधान केन्द्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कपास भारत की प्रमुख नकदी फसलों में से एक है जो देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बी. टी. कपास की फसल को सबसे अधिक नुकसान रस चूसने वाले कीटों से होता है। वर्ष 2004 में बी टी कपास के आगमन के पहले कपास की फसल में टिंडे छेदक कीटों से अधिक नुकसान होता था, किन्तु बी.टी. कपास के आगमन के बाद इनके प्रकोप में कमी आयी है परंतु लगातार संवेदनशील बी. टी. संकर कपास लगाने की वजह से रस चूसक कीटों के प्रकोप में दिनोंदिन बढ़ोत्तरी देखने में आ रही है। हरियाणा में बी. टी. कपास का क्षेत्रफल लगभग 6 लाख हैक्टेयर है। बी. टी. कपास के हानिकारक कीट एवं उनका प्रबंधन निम्न प्रकार से है :

1. सफेद मक्खी – इस कीट के शिशु व वयस्क पौधों से रस चूसकर फसल को हानि पहुंचाते हैं, तथा पत्तों का मरोडिया रोग भी फैलाते हैं । कीटों के मधु स्राव करने पर काली फफूंदी आने से पत्तों की भोजन बनाने की क्षमता प्रभावित होती है। सफेद मक्खी का प्रकोप अधिक होने पर पत्तियां सूखकर काली होने लगती हैं। इस कीट का आर्थिक क्षति स्तर 6-8 वयस्क/पत्ती है।

2. हरा तेला – इस कीट के वयस्क हरे पीले रंग के लगभग 3 मि.ली. लंबे होते हैं तथा पंखों पर पीछे की ओर दो काले धब्बे होते हैं। शिशु तथा वयस्क पत्ती की निचली सतह से रस चूसकर उन्हें टेड़ी-मेढ़ी कर देते हैं। पत्तियां लाल पड़ कर अंतत: सूख कर गिर जाती हैं । इस कीट का आर्थिक क्षति स्तर 2 वयस्क या निम्फ प्रति पत्ती है। हरा तेला मुख्यत: जुलाई - अगस्त में अधिक हानि पहुंचाता है।

3. थ्रिप्स (चूरड़ा) – थ्रिप्स के वयस्क छोटे एवं पीले-भूरे रंग के होते हैं। मादा कीट पत्ती की निचली सतह पर अंडे देते हैं। शिशु और वयस्क थ्रिप्स पत्ती के भीतरी भाग की कोशिकाओं से रस चूस लेते हैं। इसके प्रकोप से पत्तियां हल्की मुड़कर मुरझाने लगती हैं तथा इनकी सतह बाद में चांदी जैसे रंग की हो जाती है, इसलिए इन्हें सिल्वर लीफ के नाम से भी जाना जाता है। इस कीट के अधिक प्रकोप से पत्तियों में रतुआ जैसा पदार्थ उत्पन्न होता है जिससे पत्तियों में भारीपन आ जाता है। थ्रिप्स मई-जून के महीने में अधिक क्षति पहुंचाता है।

4. माहू (चेपा) – चेपा के शिशु व वयस्क पत्तियों की निचली सतह पर झुंड में पत्तियों से रस चूसते रहते हैं। इसके कारण पत्तियां टेड़ी-मेढ़ी होकर मुरझा जाती हैं अंतत: बाद में झड़ जाती हैं। प्रभावित पौधे पर काली फफूंदी भी पनपने लगती है जो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को प्रभावित करती है। चेपा मुख्यत: सितम्बर-अक्तूबर में पत्तों से रस चूसकर नुकसान करता है।

5. मीली बग – इस कीट के शिशु व वयस्क सफेद मोम की तरह होते हैं तथा पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसकर उन्हें कमज़ोर बना देते हैं। मीली बग ग्रसित पौधों पर प्राय: काली अथवा भूरी चींटियां काफी संख्या में चलती नज़र आती हैं। इस कीड़े की अधिक संख्या बढने पर पौधों पर दूर से ही रुई-सी नज़र आती है तथा इस प्रकार यह कीट खेत में पूरी फसल पर फैल जाता है। खरीफ मौसम में अनेक पौधे एवं खरपरवार इसके पनपने में सहायक हैं। यह एक बहुभक्षी कीड़ा है जो कपास के अलावा भिंडी, बैंगन, ग्वार आदि फसलों को भी नुकसान पहुंचाता है।

6. कपास का धूसर (डस्की बग) – इस कीट के वयस्क 4-5 मि. ली. लंबे राख या भूरे रंग के तथा मटमैले सफेद पंखों वाले होते हैं जिनके निम्फ छोटे व पंख रहित होते हैं । शिशु व वयस्क दोनों ही कच्चे बीजों से रस चूसते हैं जिस से बीज पक नहीं पाते तथा वज़न में हल्के रह जाते हैं। जिनिंग के समय कीटों के दबकर मरने से रूई की गुणवत्ता प्रभावित होती है जिससे बाज़ार मूल्य कम हो जाता है।

7. दीमक – छोटे व बड़े पौधों की जड़ों को काट कर क्षति पहुंचाती है तथा प्रकोपित पौधे बिना ज़ोर लगाये आसानी से उखड़ जाते हैं । कच्ची गोबर की खाद के इस्तेमाल से व खेत में फसल अवशेष छोड़ने से भी इस कीट का प्रकोप बढ़ जाता है। यह कीट मुख्यत: मई-जून तथा सितम्बर-अक्तूबर महीने में नुकसान पहुंचाता है।

समन्वित कीट प्रबंधन :

- कीट नियन्त्रण कार्यक्रम में कीट अवरोधी किस्मों का चुनाव बहुत लाभदायक है।
- गैर फसली समय में खरपतवारों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।
- सभी रस चूसक कीटों के आक्रमण को कम करने के लिए पौधे से पौधे के बीच की दूरी तथा पौधों की संख्या निश्चित रखनी चाहिए।
- मीली बग की संख्या को कम करने के लिए कीट अवरोधी फसल जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा को खेत के चारों ओर लगाना चाहिए।
- नत्रजन उर्वरकों का अधिक मात्रा में उपयोग नहीं करना चाहिए।
- मीली बग के फैलाव को रोकने के लिए प्रभावित कपास के पौधों या खरपतवारों को कपास के खेत, नहरों या सार्वजनिक स्थानों पर नहीं फैंकना चाहिए।
- अप्रैल में खेत की जुताई कर खुला छोड़ देना चाहिए ताकि ज़मीन में छिपे कीट ऊपर आ जायें और धूप से नष्ट हो जाएं।
- मीली बग से प्रभावित खेतों में पशुओं तथा मनुष्यों को आवगमन से रोक देना चाहिए।
- प्राकृतिक शत्रुओं के बचाव के लिए फसल बिजाई के शुरुआती तीन महीनों तक रसायनों का छिड़काव न करके आवश्यकता होने पर नीम के तेल का छिड़काव करें।
- एक चूसक कीटों के नियंत्रण के लिए क्राइसोपरला स्पीसीज को 15 दिनों के अन्तराल पर छोडें।
- परजीवी, परभक्षी जीवों का संरक्षण करना चाहिए। मीली बग की रोकथाम के लिए एनासियस की संख्या बढाएं।
- प्राकृतिक शत्रु जैसे कॉकसीनेला सेप्टेम्पंक्टाटा, ब्रुमस, सुचुरेलीस, मोनोचीलस का संरक्षण करें।
- दीमक से बचाने के लिए बीज को 10 मि.ली. क्लोरपायरिफॉस 20 ई. सी. प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर के बिजाई करें।
- मीली बग की रोकथाम के लिए प्रति लीटर पानी में 3 मि.ली. प्राफेनोफॉस 50 ई.सी. अथवा 4 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. अथवा 1.5 ग्राम थायोडिकार्ब (लर्विन 75 डब्ल्यू.पी.) को मिलाकर छिड़काव करें।
- रस चूसक कीटों की रोकथाम के लिए प्रति एकड़ 150-200 लीटर पानी में मिलाकर किसी भी एक कीटनाशक का प्रयोग करें। 250-350 मि.ली. ड़ाइमेथोएट (रोगोर 30 ई.सी.) 300-400 मि. ली. आक्सीड़िमेटॉन मिथाईल (मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी.) 40 मि. ली. इमीड़ाक्लोपरिड़ (कॉन्फिडोर 17.8 ई.सी.) अथवा 40 ग्राम थायोमीथोक्साम (एकतारा 25 घु. दाने)। ●

कीटनाशकों का उपयोग – सुरक्षा के साथ

✍ **नरेन्द्र सिंह, जयलाल यादव एवं हवा सिंह सहारण**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि रसायनों का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है जिसके कारण दुर्घटनाएं आए दिन घटित होती रहती हैं। आईये हम सब मिलकर इन पर विचार करें तथा मनुष्य, पशु-पक्षी, फसल एवं स्प्रेयर के बचाव में कुछ सुझाव रखें।

खरीदते समय सावधानियां :

1. विश्वसनीय विक्रेता से विश्वसनीय कम्पनी की कृषि रक्षा दवा खरीदें। खरीदते समय विक्रेता से रसीद अवश्य मांगें तथा दवा के उपयोग की अन्तिम तिथि अवश्य पढ़ लें।
2. कृषि रक्षा रसायन बंद पैकेट में ही खरीदें।
3. दवा के साथ दिये गये कागज़ पर लिखे या डिब्बे पर अंकित निर्देश अवश्य पढ़ें।
4. यदि दवा के सम्बन्ध में आपको कोई शिकायत है तो दवा की कम्पनी, दवा के विक्रेता की शिकायत आप ज़िले के उपभोक्ता फोरम में जमा करा सकते हैं। ध्यान रखें कि आपके पास खरीद की रसीद, प्रमाण हेतु अवश्य हो।

छिड़काव से पूर्व सावधानियां :

1. सुरक्षा उपकरणों की जांच करें, यदि खराब है तो समय पर उसे सुधारें।
2. पानी में दवा की मात्रा (संस्तुति की गई) मिलायें तथा सांद्रता सहित रखें।
3. कीटनाशक का डिब्बा या पैकेट को खोलते समय उसे लीक न होने दें।
4. सभी रसायनों का खुले तथा हवादार स्थान में छिड़काव हेतु मिश्रण तैयार करें तथा दवा को गहरे बर्तन में बड़े डंडे से हिलायें एवं मिश्रित करें।
5. घोल बनाते समय हवा चलने की दिशा के विरुद्ध मुंह न करें जिससे दवा शरीर पर आये।
6. घोल के उपयोग करने के बाद बर्तन को साफ पानी से अच्छी तरह कई बार साफ करें।

दवा छिड़काव के दौरान सावधानियां :

1. छिड़काव के समय वस्त्रों से अपने शरीर को ढक कर रखें।
2. जहां तक सम्भव हो प्लास्टिक के दस्ताने पहनकर काम करें।
3. हवा चलने की दिशा में ही मुंह करके छिड़काव करें। दवा छिड़काव का कार्य सुबह या सायं को करें।
4. सही समय एवं सही मात्रा में फसल पर छिड़काव सुनिश्चित करें।
5. स्प्रेयर को मुंह द्वारा या नोजिल द्वारा न खींचें।
6. छिड़कावयर में किसी भी प्रकार की लीकेज न रखें।
7. पशु एवं अन्य व्यक्तियों को छिड़काव की दवा से दूर रखें।
8. कीड़ों/रोगों द्वारा क्षति की सीमा यदि आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण नहीं है तो दवा का छिड़काव न करें।

छिड़काव के बाद सावधानियां :

1. छिड़काव के बाद टंकी में बचे हुए घोल को किसी सुरक्षित स्थान पर डालें।
2. छिड़कावयर को कई बार साफ करें।
3. छिड़काव करने के बाद स्नान अवश्य करें। बाल, नाखून आदि को साबुन से अच्छी तरह साफ करें।
4. जिस खेत में छिड़काव किया गया है, उसमें तुरन्त आदमियों को घुसने से मना करें।
5. यदि सब्जी/फल वाली फसलों पर छिड़काव किया गया है तो पके फलों को तोड़कर ही दवा छिड़कें।

कृषि रसायनों का सुरक्षित भण्डार कैसे करें :

1. दवा को किसी सुरक्षित स्थान पर बच्चों एवं पालतु पशुओं की पंहुच से दूर रखें। सम्भवत: ताले में रखें।
2. दवा को हमेशा लेबल लगा कर खाने, पीने के डिब्बों से अलग रखें।
3. कीटनाशक/फफूंदनाशक/खरपतवार नाशक दवाओं को अलग-अलग व दूर रखें।
4. समय-समय पर पैकेट या डिब्बों की लीकेज की जांच करते रहें।
5. कीटनाशक दवाओं को हमेशा ठण्डे एवं शुष्क स्थान पर ही रखें।
6. कीटनाशक दवा निकालते समय बंद स्थान का प्रयोग न करें।
7. यदि दवा पाऊडर फोर्म में डिब्बे में है तो डिब्बा खालते समय दवा के पाऊडर को उड़ने न दें। ●

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951 (ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स + फंजीसाइड्स + हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

जून मास के कृषि कार्य

फसलों में

कपास

कपास की फसल को पहला पानी देने से पहले एक गोड़ी अवश्य कर लें। इससे घास-फूस नष्ट हो जाते हैं तथा नमी कुछ और समय तक बनी रहती है। जहां तक संभव हो सिंचाई देर से करें। फसल की छंटाई करके फालतू पौधों को कतारों से निकाल दें। कतारों में पौधों की दूरी कम से कम 30 सैं.मी. व संकर कपास में 60 सैं.मी. रखें। साधारणत: कपास में पहला पानी बिजाई के 45-50 दिन बाद लगायें। कपास में बिजाई के 40-45 दिनों के बाद सूखी गुड़ाई के बाद स्टोम्प 1.25 लीटर प्रति एकड़ के 200-250 लीटर पानी में घोल से उपचार के पश्चात् सिंचाई करने से भी वार्षिक खरपतवारों का उचित नियन्त्रण हो जाता है।

2, 4-डी इस फसल के लिए अत्यंत घातक है। इसलिए ध्यान रखें कि जिन छिड़काव यंत्रों से 2, 4-डी पहले प्रयोग में लाया गया हो उन्हें फफूंदनाशक या कीटनाशक दवाओं के छिड़काव के लिए प्रयोग में न लायें। 2, 4-डी का संपर्क कपास के प्रयोग में लाए जाने वाले उर्वरकों, कीट व फफूंदनाशक दवाओं के साथ भी न होने दें। समस्या हो जाने पर प्रभावित कोंपलों (बन्दरपंजा) को 15 सैं.मी. काट दें तथा फसल में नत्रजन वाली खाद डालें एवं 2.5 प्रतिशत यूरिया तथा 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करें। कोंपलें काटने तथा यूरिया+ज़िंक सल्फेट के छिड़काव का काम एक सप्ताह बाद दोबारा करें।

चूरड़ा (थ्रिप्स) या माईट का प्रकोप होने पर 250 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कोणदार धब्बों से बचाव के लिए प्रति एकड़ फसल पर 6 ग्राम स्ट्रैप्टोसाईक्लिन व 600 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड प्रति एकड़ 150 लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें। मीलीबग से बचाव के लिए नदी-नालों, सड़कों, मेढ़ों, खालों आदि के किनारों पर उगने वाले खरपतवारों, विशेषकर कांग्रेस घास को जलाकर नष्ट करें।

तकनीकी सहायता :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- सुरेन्द्र सिंह, सह-निदेशक (बागवानी)
- तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गन्ना

समय-समय पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें व खरपतवारों को नलाई करके निकाल दें।

गन्ने की फसल में नाइट्रोजन की तीसरी मात्रा इस महीने के अंत तक अवश्य डाल दें। गन्ने के खेत में चौथा पानी लगाने के बाद जब खेत में बत्तर आ जाए तो 45 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालकर ऊपर से गोड़ी कर दें या फिर यही मात्रा खरपतवार रहित खेत में पानी लगाने से पहले डालें और बाद में हल्का पानी लगा दें। मोढ़ी फसल में उपर्युक्त खादों की डेढ़ गुनी मात्रा डालें।

कांगियारी के प्रकोप को रोकने के लिए कांगियारीयुक्त दुमों के ऊपर बोरी चढ़ाकर सावधानी से काट लें और बाद में रोगी पौधों को जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर दें। कांगियारीयुक्त दुमों से भरी बोरी को दस मिनट तक उबलते हुए पानी में रखकर कांगियारी के बीजाणुओं को नष्ट कर दें। इस कार्यक्रम को अभियान के रूप में अपनाएं।

यदि मोढ़ी फसल हो व कनसुआ का प्रकोप हो, तो 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ फसल में सिंचाई के साथ दें। काली कीड़ी व पाइरिल्ला का आक्रमण होने पर 400 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. या 160 मि.ली. डाईक्लोरवास 76 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। परजीवियों द्वारा पाइरिल्ला की रोकथाम करें। अधिक जानकारी के लिए समीप के कृषि विज्ञान केन्द्र या गन्ना अनुसंधान केन्द्र, जी. टी. रोड, करनाल या गन्ना विभाग के अधिकारियों से मिलें। माईट (अष्टपदी) को मारने के लिए 600 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कुछ क्षेत्रों में चोटी बेधक (टॉप बोरर) काफी नुकसान पहुंचाता है। इसके लिए जून के अंतिम सप्ताह में 13 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान 3 जी (फ्यूराडान) या 8 किलोग्राम फोरेट (थिमेट) 10-जी दानेदार कीटनाशक प्रति एकड़ डालकर तुरंत सिंचाई कर दें। यह उन्हीं खेतों में डालें जिनमें अप्रैल-मई में 5 प्रतिशत से अधिक पौधे कीटग्रस्त थे या फिर पिछले वर्ष 15 प्रतिशत से अधिक हानि थी। इन कीटनाशकों को यूरिया खाद में मिलाकर भी डाल सकते हैं।

बैसाखी मूंग

मूंग में 70-80 प्रतिशत फलियां पकने पर फसल की कटाई कर लें ताकि सावनी फसलों की बिजाई के लिए खेत खाली हो सकें।

गर्मियों में ली जाने वाली फसलों में हरा तेला, सफेद मक्खी और छोटी-छोटी सूण्डियों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. या 250 मि.ली. ऑक्सीडेमिटोन मिथाईल 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

धान

धान की रोपाई इस माह से शुरू कर दें। इसके लिए खेत के चारों ओर डोलों को मज़बूत करें, खेत में अच्छी तरह पौध पनपने के लिए व पानी बनाए रखने के लिए खेत को अच्छी तरह कद्दू करके एकसार कर लें। यदि

खेत में हरी खाद वाली फसल खड़ी हो तो जुताई करके पहले इसे दबा दें व फिर रोपाई करें। पौध को पंक्तियों में रोपें। लंबी किस्मों की रोपाई 20 ×15 सैं.मी. की दूरी पर करें। बौनी किस्मों की व पछेती हालत में लंबी बढने वाली किस्मों की रोपाई 15 सैं.मी. फासले की कतारों में व पौधों में भी 15 सैं.मी. की दूरी रखकर करें। ध्यान रखें कि पौध 2-3 सैं.मी. से अधिक गहरी न रोपें।

यदि पनीरी गारा किए खेत में लगाई जा रही है तो ऐसे खेतों में लगाने से पहले 20 कि.ग्रा. यूरिया और 60 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट या 22 कि.ग्रा. डी. ए. पी. तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ का छींटा लगाएं। 15 दिन की पनीरी होने पर 25 कि.ग्रा. यूरिया का छींटा देकर ऊपर से हल्का पानी लगाएं।

बौनी मध्यम अवधि वाली किस्में जैसे एच के आर 127, एच के आर 126, एच के आर 120, हरियाणा संकर धान 1, जया व पी आर 106 एवं मध्यम कम अवधि वाली किस्मों जैसे एच के आर 47, आई आर 64, एच के आर 46 में 130 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्युरेट ऑफ पोटाश तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ तथा ज़िंक, फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की 1/3 मात्रा लेव बनाते समय शेष दो बार बराबर-बराबर मात्रा में रोपाई के 3 व 6 सप्ताह बाद दें। जबकि बौनी, कम अवधि वाली किस्मों, जैसे एच के आर 48 व गोबिन्द आदि में 105 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व ज़िंक सल्फेट की ऊपर बताई गई मात्रा प्रति एकड़ प्रयोग करें। नत्रजन की 1/3 मात्रा तथा फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करें तथा 1/3 नत्रजन की मात्रा बिजाई के 21 दिन बाद व 1/3 मात्रा रोपाई के 42 दिन बाद प्रयोग करें। अगर खेत में ढैंचे की हरी खाद लगाई गई हो तो ऊपर बताई गई नत्रजन की 1/3 मात्रा कम कर दें।

लंबी बासमती धान में 50 कि.ग्रा. यूरिया, 75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ प्रयोग करें जबकि बौनी बासमती में 80 कि.ग्रा. यूरिया, 75 कि.ग्रा./एकड़ सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रयोग करें। फास्फोरस व ज़िंक सल्फेट की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करें। लंबी बासमती में नत्रजन की आधी मात्रा रोपाई के 21 दिन बाद व शेष आधी मात्रा 42 दिन बाद डालें। जबकि बौनी बासमती में 1/3 नत्रजन खेत की तैयारी करते समय, 1/3, 21 दिन बाद व 1/3, 42 दिन बाद प्रयोग करें। ध्यान रहे कि नत्रजन उर्वरक उस समय दें जब खेत में पानी खड़ा न हो।

खरपतवारों की प्रारंभ से ही रासायनिक ढंग से रोकथाम के लिए पौध लगाने के 1-3 दिन बाद खड़े पानी में (4-5 सैं.मी. गहरा) प्रति एकड़ 12 कि.ग्रा. मचैटी दानेदार या बासालीन दानेदार सारे खेत में छिड़क दें या सैटर्न दानेदार केवल 6 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से रोपाई के 2-3 दिन बाद खड़े पानी में एकसार बिखेर दें या ब्यूटाक्लोर 50 ईसी (मचैटी, डेलक्लोर ई.सी., मिलक्लोर, नर्वदाक्लोर, कैप क्लोर, ट्रैप, तीर, हिल्टाक्लोर) या सैटर्न ई.सी. या स्टोम्प 30 ई.सी. में से किसी एक को प्रति एकड़ 1.2 लीटर के हिसाब से या अनिलोफॉस 30 ई.सी. (एरोजीन, अनिलोगार्ड, कन्ट्रोल एच) की 530 मिली. मात्रा या अनिलोफॉस 50 ई. सी. (अनिलोगार्ड) 325 मि.ली. या अनिलोफॉस 18 ई.सी. (रिको) 900 मि.ली. या प्रेटिलाक्लोर 50 ई.सी. (रिफिट इरेज) 800 मिली. या प्रेटिलाक्लोर 40 ई. डब्ल्यू (एरिजान) 1000 मिली. या प्रेटिलाक्लोर 6.0 प्रतिशत + पायरोजोसल्फयूरोन ईथाईल 0.15 प्रतिशत जी.आर. (इरोज 6.15 प्रतिशत दानेदार) 4.0 किग्रा. या ओक्साडायर्जिल (टोपस्टार 80 प्रतिशत घु.पा.) 50 ग्रा. मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 60 किग्रा. सूखी रेत में मिलाकर रोपाई के 2-3 दिन बाद खड़े पानी में छिड़क दें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु मेटसल्फ्यूरोन + क्लोरीम्यूरान (एलमिक्स 20 घु. पा.) का 8 ग्राम तैयारशुदा मिश्रण + 0.2 प्रतिशत सरफेक्टेन्ट या ईथाक्सी सल्फ्यूरान (सनराईस 15 घु. दाने) 50 ग्राम या 2, 4-डी एस्टर की 400 ग्राम (प्रोडेक्ट) का पौध रोपण के 20-25 दिन बाद 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें अथवा पिनोक्सुलाम (ग्रेनाईट 24 प्रतिशत एस.सी.) की 37.5 मिली. मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 120 लीटर पानी में मिलाकर पौध रोपाई के 8-12 दिन बाद छिड़काव करें। छिड़काव करने से एक दिन पहले व एक दिन बाद खेत में पानी खड़ा न हो। धान में मिले जुले खरपतवारों के लिए 100 मिली. बिस्पाइरी बैक सोडियम (नोमिनी गोल्ड/तारक) 10 प्रतिशत एस एल या पिनोक्सुलम 2.5% ओ.डी. (असर्ट 2.5% ओ.डी.) 360 मि.ली. प्रति एकड़ या पिनाक्सुलम+सायहैलोफोप 6% ओ.डी. (विवाया 6% ओ.डी.) 900 मि. ली. प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में घोलकर पौध रोपण या सीधी बिजाई के 15-25 दिन बाद प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। छिड़काव करने से एक दिन पहले व एक दिन बाद खेत में पानी खड़ा न हो। ध्यान में रखें कि उपर्युक्त खरपतवारनाशकों में से केवल एक ही का प्रयोग एक बार ही करना होता है।

बीजजनित रोगों से बचाव के लिए बीजोपचार अवश्य करें। भारी व स्वस्थ बीज के चुनाव हेतु 10 प्रतिशत नमक के घोल (10 लीटर पानी में 1 कि.ग्रा. नमक) में बीज को थोड़ा-थोड़ा करके डालें। ऊपर तैरते हुए बीज तथा अन्य पदार्थों को बाहर निकालकर नष्ट कर दें। नीचे बैठे भारी बीज को साफ पानी में 3-4 बार धो लें ताकि बीज की सतह पर नमक का अंश न रहने पाए और फिर बीजगत फफूंद व जीवाणुओं के निवारण के लिए फफूंदनाशक उपचार करें। इसके लिए 10 लीटर पानी में 10 ग्राम कार्बेन्डाज़िम (बाविस्टिन) व 2.5 ग्राम पौसामाईसिन या 1 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन घोल लें और इस घोल में 8 कि.ग्रा. लंबी किस्मों के व 12 कि.ग्रा. बौनी किस्मों के बीज को 24 घण्टे तक भिगोकर उपचारित करें। धान की पनीरी को उखाडने से 7 दिन पहले कार्बेन्डाज़िम 1 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से रेत में मिलाकर पनीरी में एक साथ बिखेर दें। ध्यान रहे पनीरी में उथला पानी हो। धान की पनीरी खड़े पानी में ही उखाड़ें। पौध शय्या में यदि पौध पीली पड़कर सफेद हो जाए तो 0.5 प्रतिशत हरा कसीस या फैरस सल्फेट के घोल का छिड़काव करें।

धान में जड़ की सूंडी की समस्या हो तो सेविडाल 4-जी या कार्बोफ्यूरान 3-जी या 4 कि.ग्रा. फोरेट 10-जी प्रति एकड़ डालें। दवाई एक सार डालने के लिए इनमें यूरिया खाद मिला दें।

बाजरा

बाजरा के बीजने का समय आ ही गया है। उन्नत संकर किस्मों, एच एच बी 50, 60, 67 (संशोधित), एच एच बी 94, 117 व एच एच बी 146, 197, 216, 223, 226, 234, 272, 299, 311 तथा मिश्रित एच सी 10 व 20 के बीज का अपने साधनों के हिसाब से प्रबंध कर लें। संकर बाजरे का बीज हर साल नया लेकर ही बोएं। वैसे तो 1-15 जुलाई तक का

समय बाजरे की बिजाई का उत्तम समय है परंतु बारानी इलाकों में मानसून की पहली वर्षा पर ही बिजाई शुरू करें। खेत को 2 या 3 बार जोतकर फौरन सुहागा लगाकर अच्छी तरह तैयार करें ताकि घास-फूस न रहे व नमी बनी रहे। बारानी क्षेत्रों में वर्षा से पहले खेत के चारों तरफ खूब मज़बूत डोलें बनाएं ताकि खेत में पानी जमा हो जाए तो आगामी फसल के काम आए। एक एकड़ के लिए 1.5 से 2 कि.ग्रा. बीज चाहिए। खेत में सही उगाव के लिए बिजाई खूड़ों में इस तरह से करें कि बीज के ऊपर 2.0 सैं. मी. से अधिक मिट्टी न पड़े। दो खूड़ों का फासला 45 सैं.मी. रखें। वर्षा के मौसम में मेढ़ों पर बिजाई करना अच्छा होता है। इस तरीके की बिजाई के लिए विश्वविद्यालय के शुष्क खेती अनुसंधान केन्द्र द्वारा निर्मित मेढ़ों पर बीजने वाले हल का प्रयोग करें।

यदि असिंचित संकर बाजरा इस माह के अंत में बोने जा रहे हैं तो उसमें 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, जोकि लगभग 35 कि.ग्रा. यूरिया से प्राप्त हो सकती है, बिजाई के समय डालें। यदि खेत में फास्फोरस की मात्रा मध्यम दर्जे से कम है तो इस ज़मीन में 50 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से भी डालें। रेतीली व हल्की ज़मीन में 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट बिजाई के समय प्रति एकड़ अवश्य डालें।

सिंचित क्षेत्रों में संकर बाजरे में बिजाई के समय 25 कि.ग्रा. नत्रजन, 25 कि.ग्रा. फास्फोरस व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें। इसके लिए बिजाई के समय 55 कि.ग्रा. यूरिया व 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट प्रति एकड़ डालें। बाकी नत्रजन को दो बार बराबर मात्रा में पौधों की छंटाई के बाद व सिट्टे निकलते समय डालें। भूमि में यदि लौह तत्व की कमी है (डी.टी.पी.ए. निष्कर्षणीय लौह तत्व 4.5 पी.पी.एम. से कम है) तो 0.5 प्रतिशत हरा कशीश (आयरन सल्फेट) के घोल का छिड़काव बाजरा की बिजाई के 25-30 दिन बाद (फुटाव अवस्था) करें।

बिजाई से पूर्व बीजोपचार करना न भूलें। बीजोपचार के लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल (10 लीटर पानी में 1 कि.ग्रा. नमक) में बाजरे के बीज को थोड़ा-थोड़ा डालकर हाथ से हिलाएं। चेपा के पिंड तथा तैरते हुए पदार्थों को निकाल कर नष्ट कर दें तथा नीचे बैठे हुए भारी बीजों को साफ पानी से 3-4 बार अच्छी तरह धोकर छाया में सुखा लें ताकि बीज पर से पानी सूख जाए और पुन: प्रति किलोग्राम बीज का 4 ग्राम थाइरम या मैटालैक्सिल 6 ग्राम से सूखा उपचार करके बोएं, जो किसी बीजोपचारी ड्रम या मिट्टी के घड़े आदि में किया जा सकता है। घड़े या ड्रम में दो-तिहाई बीज और आवश्यक अनुपात में दवा डाल देते हैं। यदि उपचार घड़े से करें तो घड़े के मुंह को पॉलिथीन या मोटे कपड़े से बांध लें और फिर बीज व दवा से भरे हुए घड़े या ड्रम को लगभग 10 मिनट तक अच्छी तरह हिलाएं ताकि दवा अच्छी तरह मिल जाए। अगेती बोई फसल, यानि जून के अंतिम या जुलाई के शुरू में बोई गई फसल में अरगट या चेपा का प्रकोप कम होता है।

बाजरे में खरपतवारों की रोकथाम रसायनों द्वारा भी की जा सकती है। बिजाई के तुरन्त बाद 400 ग्राम एट्राजीन 50 प्रतिशत घु.पा. प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। यदि बिजाई के तुरन्त बाद एट्राजीन का प्रयोग न कर सकें तो बिजाई के बाद 10-15 दिन के बीच में भी उतनी ही मात्रा प्रयोग कर सकते हैं।

अरहर

अरहर की कम समय में पकने वाली मानक (एच 77-216), यू पी ए एस-120, पारस (एच 82-1) अच्छी किस्में हैं जोकि 130-140 दिन में पक कर तैयार हो जाती हैं। इन सभी की बिजाई इस माह में पूरी कर लें। एक एकड़ के लिए लगभग 5-6 कि.ग्रा. बीज डालें। इन सभी किस्मों की बिजाई कतारों में 40 सैं.मी. की दूरी रखकर करें। यह और भी अच्छा रहेगा कि अरहर की दो कतारों के बीच के हिस्से में मूंग या उड़द की कम समय में पकने वाली किस्म की एक-एक कतार उगाई जाए। यदि ऐसा करना हो तो खूड़ों का फासला 50 सैं.मी. रखकर अरहर की बिजाई करें। बीज को राईजोबियम के टीके से उपचारित करके ही बोएं। जिन खेतों में गत वर्ष अंगमारी का प्रकोप रहा हो उनमें अरहर की खेती न करें।

अरहर की बिजाई करते समय 18 कि.ग्रा. यूरिया और 100 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट या इनके अभाव में 35 कि.ग्रा. डाइअमोनियम फास्फेट (डी. ए. पी.) प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के समय ड्रिल करें। बीज को बोते समय राईजोबियम का टीका लगाने से पैदावार में वृद्धि की संभावना रहती है। इसके लिए एक एकड़ के बीज में एक टीका राइजोबियम का व एक टीका फास्फोबैक्टीरिया का बिजाई से पहले लगाना चाहिए।

मूंगफली

मूंगफली की बिजाई इस माह के अन्तिम सप्ताह से शुरू कर देनी चाहिए तथा जुलाई के प्रथम सप्ताह तक पूरी कर लें। इसकी उन्नत किस्मों, मुख्यत: गुच्छेदार किस्मों, एम एच-4 व पंजाब मूंगफली नं. 1 बोने की सिफारिश की जाती है। बुवाई कतार से कतार का फासला 30 सैं.मी. रखकर करनी चाहिए। कतारों में बुवाई इस प्रकार करें कि बीज लगभग 15 सैं.मी. के फासले पर पड़े जबकि पंजाब मूंगफली नं. 1 के लिए यह फासला 22.5 सैं.मी. रखें। एम एच 4 के लिए 32 कि.ग्रा. गिरी व पंजाब मूंगफली नं. 1 के लिए 34 किलोग्राम गिरी प्रति एकड़ की दर से डालें।

मूंगफली बोते समय एक एकड़ भूमि में बिजाई के समय 13 कि.ग्रा. यूरिया व 125 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट, 16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट मिलाकर ड्रिल करें। मूंगफली में जिप्सम का प्रयोग लाभदायक पाया गया है।

दीमक व सफेद लट के प्रकोप से फसल को बचाने के लिए 15 मि. ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या क्विनलफॉस 25 ई.सी. प्रति कि.ग्रा. बीज में बिजाई से दो-तीन घंटे पूर्व मिला लें।

जून में वर्षा होते ही सफेद लट के प्रौढ़ों (भूण्डों) को अभियान चलाकर नष्ट करें। बीज गलन व पौध गलन से बचाव के लिए रोगमुक्त गिरियों को बोने से पूर्व कैप्टान या थाइरम (3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित अवश्य कर लें।

तिल

तिल की बिजाई अगले महीने या मानसून की पहली वर्षा पर की जा सकती है। इसके लिए उन्नत किस्म हरियाणा तिल नं. 1 व एच टी 2 की सिफारिश की जाती है। हल्की ज़मीन में एक एकड़ के लिए लगभग 2 कि. ग्रा. बीज इस्तेमाल करें और पंक्तियों में एक फुट के फासले पर बिजाई करें। पौधे से पौधे का फासला 15 सैं.मी. रखें। हल्की ज़मीन में बिजाई के समय 33 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ पोरें। खुडों का फासला 30 सैं.मी. रखें। जड़गलन व तना गलन के बचाव के लिए बीज का उपचार थाइरम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से करें।

मक्का

मक्का की बिजाई इस माह के अंत में शुरू कर लें। केवल उन्नत किस्में

एच एच एम-1, एच एच एम-2, एच एम-4, एच एम-5, एच एम-10, एच एम-11, एच क्यू पी एम-5, एच क्यू पी एम-4 व एच क्यू पी एम-1 बीजें। एक एकड़ में बिजाई के लिए 8 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है। खेत को अच्छी तरह तैयार करके बिजाई कतारों में 75 सैं.मी. व पौधे से पौधे की 22 सैं.मी. की दूरी पर करें। मक्का की किस्मों में 135 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें। निम्न व मध्यम पोटाश स्तर वाली ज़मीन में 20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश, फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट बिजाई पर डालें व 1/3 नत्रजन की मात्रा बिजाई पर, 1/3 जब फसल एक फुट की लंबाई की हो जाए व 1/3 मात्रा जब सिट्टे निकलने वाले हों तब डालें। संकर बाजरा (बारानी क्षेत्रों में) के लिए 35 कि.ग्रा. यूरिया व 50 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग करें।

बीज गलन व पौध अंगमारी से बचाव हेतु बोने से पहले बीज को थाइरम (4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करें। मक्की में होने वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए एट्राजीन 50 प्रतिशत घु.पा. की 400-600 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के तुरन्त बाद 200-250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। मक्की में सभी तरह के खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए टेम्बोट्रायोन (लोडिस 34.4 प्रतिशत घु.पा.) का 115 मिली. + 400 मिली. चिपचिपे पदार्थ को 200 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के 10-15 दिन बाद या खरपतवार की 2-3 पत्ती की अवस्था पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

गेहूँ

बीज हेतु रखने वाले गेहूँ का यदि आप सौरताप या सूर्य की गर्मी से बीजोपचार कर लें तो आप अगले वर्ष इन्हीं बीजों से खुली कांगियारी रहित गेहूँ की फसल ले सकते हैं। बीजोपचार के लिए मई-जून के महीने में किसी शांत व धूप वाले दिन गेहूँ को 8 बजे प्रात: से 12 बजे दोपहर तक पानी में भिगोयें। ऊपर तैरते हुए पदार्थों को बाहर निकालकर नष्ट करें। चार घण्टे बाद भीगे हुए बीज को किसी पक्के फर्श या तिरपाल पर दिन भर सुखाकर अगले वर्ष बोने के लिए प्रयोग में लाएं। धूप उपचार के बाद किसी दवा उपचार की आवश्यकता नहीं।

सोयाबीन

जून के अंत से जुलाई के आरंभ तक बिजाई करें। अच्छे जमाव के लिए बिजाई के समय ज़मीन में नमी पूरी मात्रा में होनी चाहिए। 30 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़, कतार से कतार का फासला 45 सैं.मी. रखकर 2.5 सैं.मी. गहरी बिजाई करें। पी के 416, 564 और 472 किस्में ही बोएं। 22 किलोग्राम यूरिया और 200 कि.ग्रा. एस.एस.पी. प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। फसल की नाइट्रोजन की ज़रूरत पूरी करने के लिए बीज का सोयाबीन के राइजोबियम टीके से उपचार अवश्य करें।

ज्वार

एस एस जी 59-3, एच सी 136, 171, 308 एच जे 541 व एच जे-513 किस्मों की जून 25 से 10 जुलाई तक बिजाई करें। 20-24 कि.ग्रा. बीज व सुडान घास के लिए 12-14 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़, 25 सैं.मी. कतार से कतार की दूरी पर बिजाई करें। कम वर्षा वाले व बारानी इलाकों में बिजाई के समय 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ डालें। मध्यम फास्फोरस व पोटाश वाली जमीन में ज्वार की एक ही कटाई वाली किस्मों के 12 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़; व 12 कि.ग्रा. पोटाश प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। सारी खाद बिजाई के समय कतारों में ड्रिल करें। अधिक वर्षा वाले व सिंचित इलाकों में 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के समय तथा 10 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के एक महीने बाद भी डालें। मध्यम फास्फोरस व पोटाश वाली जमीनों में ज्वार की एक ही कटाई वाली किस्मों में 12 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ व 12 कि.ग्रा. पोटाश प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। ज्वार में खरपतवारों की रोकथाम के लिए बिजाई के 7-15 दिन के अन्दर-अन्दर 200 ग्राम अट्राजीन 50 घु.पा. प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।

सब्जियों में

टमाटर

टमाटरों को अधपका ही तोड़ें तथा पकाकर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें तथा ज़रूरत पड़ने पर कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करें। विषाणु रोग से ग्रसित पौधों को निकालकर नष्ट कर दें।

खरीफ की फसल के लिए टमाटर के बीज की नर्सरी में बिजाई करें। टमाटर की फसल के लिए उन्नत किस्मों को ही प्रयोग में लें, जैसे कि हिसार अरुण, हिसार ललित और हिसार लालिमा। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 200 ग्राम बीज की ज़रूरत होगी। नर्सरी को लगभग 20 सैं.मी. ऊंचा बनाएं जिससे कि अधिक वर्षा से पौध को हानि न हो। बिजाई से पहले बीज का उपचार करें। थाइरम या कैप्टान नामक दवा एक ग्राम प्रति 400 ग्राम बीज की दर से प्रयोग करें। नर्सरी में पौध की देखरेख करें।

इस फसल में हरा तेला, सफेद मक्खी और माईट जैसे रस चूसने वाले कई कीड़े लग जाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। फल छेदक कीड़े के लिए 75 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 200 मि.ली. डेकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ खेत पर छिड़काव करें। दवा प्रयोग करने से पहले ग्रसित फलों को तोड़ कर नष्ट कर दें।

बैंगन

बैंगन के कच्चे फलों की तुड़ाई करें और बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। ध्यान रखें कि किसी तेज़ धार वाले चाकू से फलों को पौधे से काटें। ज़रूरत पडने पर फसल की सिंचाई करें तथा विषाणु रोग से बचाव करें। रोगी पौधों को उखाड़कर फेंक दें। फल व गोभ छेदक सूण्डी से ग्रसित फल व गोभ को काटकर ज़मीन में दबा दें तथा 60 मि.ली. स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस.सी.) को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर तीन छिड़काव करें।

खरीफ की फसल के लिए नर्सरी में बिजाई करें। उन्नत किस्मों को प्रयोग में लाएं, जैसे बी आर 112, हिसार श्यामल (एच 8), हिसार प्रगति, एच एल बी-25 तथा हिसार बहार।

एक एकड़ खेत में बिजाई के लिए लगभग 200 ग्राम बीज की मात्रा की आवश्यकता होगी। बिजाई से पहले बीज का थाइरम या कैप्टान नामक दवा से (एक ग्राम दवा प्रति 400 ग्राम बीज) उपचार करें। समय से खेत की तैयारी शुरू कर दें। इसमें हरा तेला, सफेद मक्खी तथा माईट के नियंत्रण के लिए 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें।

मिर्च

फसल में तैयार मिर्चों की तुड़ाई करें तथा उन्हें बेचने के लिए बाज़ार भेजें। ज़रूरत पडने पर सिंचाई करें। हानि पहुंचाने वाले कीड़ों, थ्रिप्स, अल और सफेद मक्खी तथा माईट से फसल के बचाव के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 300 मि.ली. प्रेमप्ट 20 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें तथा ज़रूरत पड़ने पर 15 दिन के अंतर पर फिर दोहराएं। कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से विषाणु रोगों का भी नियंत्रण हो जाता है। विषाणु रोगग्रस्त पौधों को निकालकर नष्ट कर दें। खरीफ की फसल के लिए टमाटर में बताए तरीके से मिर्च की भी नर्सरी में बिजाई करें। इनकी उन्नत किस्में एन पी 46ए, पंत सी-1, पूसा ज्वाला हैं। इसके लिए 400 ग्राम बीज की प्रति एकड़ आवश्यकता होगी।

अगेती फूलगोभी

इस माह अगेती फूलगोभी (किस्म पूसा कातकी) की बिजाई नर्सरी में करें तथा पौध तैयार करें। अगेती फूलगोभी के लिए लगभग 400-500 ग्राम बीज एक एकड़ खेत के लिए काफी है। नर्सरी लगभग 20 सैं.मी. ऊंची बनाएं तथा बिजाई से पहले बीज का उपचार करें (एक ग्राम थाइरम या कैप्टान प्रति 300 ग्राम बीज की दर से)। यदि बिजाई पिछले माह में की गई है तो उसकी उचित देखभाल करें। आर्द्रगलन रोग से बचाने के लिए नर्सरी में पौध को 0.3 प्रतिशत कैप्टान के घोल से सींचें। समय पर खेत की तैयारी करें। नर्सरी में वर्षा का पानी न रुकने दें।

भिण्डी

भिण्डी के नर्म फलों को नियमित रूप से तोडें व बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। हरे तेले व चित्तीदार सूण्डी से बचाव के लिए पहले बताई गई दवाइयों का इस्तेमाल करें। दवा के प्रयोग के बाद 8-10 दिनों तक फलों को काम में न लें। दवा के छिड़काव से पहले, सभी तैयार फलों को तोड़ लें।

खरीफ की फसल के लिए खेत की तैयारी करें। एक एकड़ खेत में 10 टन गोबर की खाद डालकर जुताई करें तथा बिजाई से पहले 12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (50 कि.ग्रा. किसान खाद) तथा 25 कि.ग्रा. फास्फेट (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ की दर से दें। पोटाश खाद मिट्टी की जांच के आधार पर दें। खेत को क्यारियों में बांट लें। भिण्डी की विषाणु रोगरोधी किस्मों, वर्षा उपहार या हिसार उन्नत का चुनाव करें। एक एकड़ के लिए लगभग 6 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जड़ गलन नामक रोग की रोकथाम के लिए बिजाई करने से पहले बीजोपचार कैप्टान या बाविस्टिन नामक दवा से (एक ग्राम दवा प्रति 400 ग्राम बीज) कर लें। बिजाई कतारों में करें। कतारों की दूरी 45-60 सैं.मी. रखें तथा पौधों में दूरी 30 सैं.मी. रखें। कीड़ों की रोकथाम के लिए बैंगन के लिए बताई गई दवा का प्रयोग करें।

तरबूज व खरबूजा

तरबूज व खरबूजा के पके फलों को तोड़कर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। इस महीने दोनों फसलें पककर तैयार हो जाती हैं तथा तुड़ाई का काम भी पूरा कर लिया जाता है। फलों के पकते समय सिंचाई न करें। जल्दी वर्षा होने पर इन फलों का मीठापन कम हो जाता है। फसल पूरी हो जाने के बाद खेत को खरीफ की अन्य फसलों के लिए तैयार करें।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां, जैसे लौकी, तोरी, करेला, टिण्डा आदि कच्चे फलों को तोड़कर नियमित रूप से बाज़ार भेजें। खरीफ की बेल वाली सब्जियों को लगाने के लिए इस महीने खेत तैयार करें। खेत तैयार करते समय 6 टन गोबर की खाद, 6 किलोग्राम नाइट्रोजन (25 किलोग्राम किसान खाद), 10 कि.ग्रा. फास्फोरस (60 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 10 कि.ग्रा. पोटाश (16 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें। खाद को नालियों में दें।

कद्दू जाति की फसलों में लाल भुण्डी (लालड़ी) से बचाव के लिए 25 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर भी प्रति एकड़ छिड़काव कर सकते हैं। इस कीट की लटों से बचाव के लिए 1.6 लीटर क्लोरपाईरिफॉस 20 ई.सी. को बिजाई के एक महीने बाद सिंचाई के साथ लगाएं।

सफेद चूर्णी रोग से बचाव हेतु 8-10 किलोग्राम प्रति एकड़ बारीक गंधक के धूड़े का भुरकाव या धूड़ा करें, धूड़ा सुबह या शाम के समय करें या 500 ग्राम घुलनशील गंधक (सलफैक्स) को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। खरबूजे की फसल पर गंधक का धूड़ा न करें।

इन फसलों में अल, माईट, सफेद मक्खी और हरा तेला की रोकथाम के लिए 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि फसल में फल मक्खी का प्रकोप हो तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. व 1.25 किलोग्राम गुड़ को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

शकर कन्दी

शकरकन्दी की काटों को इस माह भी लगाया जा सकता है। खेत की तैयारी पिछले माह बताए गए तरीके से करें तथा खरपतवार निकालें।

खरीफ प्याज़

खरीफ प्याज़ (किस्म एन-53 एवं एग्रीफाउण्ड डार्क रैड) के बीज की नर्सरी में बिजाई करें। इसके लिए लगभग 5-6 किलोग्राम बीज की एक एकड़ के लिए आवश्यकता होगी। इसके लिए जून का दूसरा पखवाड़ा उचित समय है। नर्सरी ऐसे स्थान पर बनाएं जहां वर्षा का पानी न रुकता हो। अधिक गर्मी से बचाव के लिए नर्सरी की देखभाल आवश्यक है। खरपतवार निकालें, नियमित सिंचाई करें तथा बीमारी से बचाएं।

अरबी

फसल की नियमित सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। खड़ी फसल में नाइट्रोजन वाली खाद दो बार देने की आवश्यकता होती है- प्रथम बार बिजाई के लगभग 3-4 सप्ताह बाद तथा दूसरी मात्रा इतने ही दिनों के अंतर पर। अरबी की नई बिजाई भी की जा सकती है। खेत की तैयारी व लगाने की विधि पहले बता दी गई है।

पालक

पालक की फसल की नियमित सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें और कटाई लायक होने पर काटें। पालक की नई बिजाई भी तैयार क्यारियों में की जा सकती है।

मूली

पूसा चेतकी मूली की किस्म को गर्मी में लगाया जा सकता है। यदि आपने इसकी बिजाई पहले कर रखी है तब फसल की सिंचाई करें, निराई करें तथा जड़ों पर मिट्टी चढ़ा दें। इसकी फसल बिजाई के बाद लगभग 40 दिनों में तैयार हो जाती है। कीड़ों आदि का आक्रमण होने पर मैलाथियान या कार्बेरिल जैसी दवाओं का छिड़काव करें। जड़ों को नर्म अवस्था में,

कड़ी होने से पहले उखाड़ लें तथा धोकर बाज़ार भेजें। नई बिजाई भी इसी महीने की जा सकती है।

अन्य सब्जियां

अन्य सब्जियों, जैसे ग्वार व लोबिया, की फसलों की नियमित रूप से सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। नर्म फलियों को तोड़कर बाज़ार में भेजें। कीट व बीमारियों से बचाव के लिए कीटनाशक व फफूंदनाशक दवाओं का प्रयोग करें तथा प्रयोग के 8-10 दिन बाद तक फसल को खाने के काम में न लाएं। ग्वार व लोबिया की खरीफ की फसल लेने के लिए खेत की तैयारी करें तथा बिजाई करें।

फलों में

नींबूवर्गीय फल

नये पौधों को गर्मी से बचाएं। पुराने पौधों के तनों पर 3 कि.ग्रा. चूने में 2 कि.ग्रा. नीला थोथा को 30 लीटर पानी में अलग-अलग भिगोकर और छानकर मिलाकर लेप करें ताकि सूर्य की तेज़ रोशनी से तने को क्षति न पहुंचे। यह घोल हर बार ताज़ा बनाकर ही प्रयोग में लाएं। इसके अतिरिक्त सिंचाई भी करते रहें व सिंचाई के पश्चात मल्चिंग अवश्य करें। जस्ते की कमी व फल गिरने से बचाने के लिए 5 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट और 2.5 कि.ग्रा. बुझा हुआ चूना 1000 लीटर पानी में घोल कर पौधों पर छिड़काव करें। इसी प्रकार नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए 1-2 कि.ग्रा. यूरिया 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। पत्तों में लीफ माईनर के नियंत्रण के लिए 750 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। नए व छोटे पौधों को लू से बचाएं, नियमित सिंचाई कर उचित नमी बनाए रखें।

अंगूर

नई या एक साल पुरानी बेलों में 25-30 ग्राम यूरिया प्रति बेल हर दूसरी सिंचाई पर देते रहें, सिंचाई भी करते रहें व फालतू बढ़वार रोकते रहें। बेलों की सिंचाई 10 दिन के अंतर पर करते रहें लेकिन जब फल तोडना शुरू करें तो सिंचाई करना बंद कर दें और फल खत्म होने पर सिंचाई ज़रूर करें। पुरानी बेलों में लगे फलों को चिड़ियों से बचाएं और पके फलों के गुच्छों को सावधानी से तोड़कर बाज़ार भेजें।

बालों वाली सूण्डी व अन्य कीटों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। थ्रिप्स के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बेर

इस महीने के दूसरे सप्ताह तक बेर की कटाई-छंटाई का काम समाप्त कर लें और पौधों की छतरी तक गुड़ाई करें। प्रति पेड़ लगभग 100 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद व सिंगल सुपर फास्फेट 2.5 कि.ग्रा. अच्छी तरह मिलाकर गहरी सिंचाई करें। बत्तर आने पर गहरी जुताई करें।

अमरूद

नए पौधों को गर्मी व लू से बचाएं और सिंचाई सप्ताह में एक बार अवश्य करें। पौधों की सूखी शाखाओं को निकाल दें। फल मक्खी के लिए फिरोमोन ट्रैप का प्रयोग करें।

आड़ू

इस महीने के पहले सप्ताह तक शरबती और मैचलैस किस्म के फल पकने शुरू हो जाएंगे इसलिए उनकी तुड़ाई का प्रबंध करें और हल्की सिंचाई भी करते रहें और तुड़ाई से पहले सिंचाई बंद कर दें। नए पौधों के तनों के साथ मिट्टी चढ़ाएं।

आम

बागों की सिंचाई नियमित रूप से करते रहें। छोटे पौधों को गर्मी व लू से बचाएं। नाइट्रोजन की बाकी बची मात्रा अगर पिछले महीने नहीं डाली है तो इस महीने डालें। पके हुए फलों की ग्रेडिंग करके बाज़ार में भेजें।

पशुओं में

गाय-भैंस

- पिछले माह के अनुसार पशुओं को अत्यधिक तापक्रम, धूप व लू से बचाने के उपाय करें व इस महीने में भी पशुपालकों को विशेष रूप से गर्मी प्रबंधन के उपाय करने चाहिएं।
- जैसा कि मई मास के कार्य में बताया गया था कि पशुओं को उच्च ऊर्जा के साथ-साथ सुपाच्य भोजन, बाई-पास प्रोटीन का उपयोग, गेहूँ चोकर व जौ का पशु-आहार में बढ़ाना, दिन में कम से कम 4-5 बार स्वच्छ पानी देना, 2-3 बार नहलाना, खनिज मिश्रण का उपयोग, हवादार आवास, शेड़ में फव्वारों वाले पंखे/कूलर आदि का इस्तेमाल, रात्रिकाल/सांयकाल में भोजन व्यवस्था आदि कार्य पशुपालक कर सकते हैं।
- 'पाइका' ग्रस्त पशुओं को पेट के कीड़े मारने की दवा देकर लवण-मिश्रित आहार प्रदान करें, ताकि 'पाइका' रोग के लक्षणों से छुटकारा प्राप्त हो।
- पशुओं को हरा चारा नहीं मिल रहा हो तो साईलेज एवं 'हे' का उपयोग किया जाए।
- पशुओं को विटामिन एवं लवण-मिश्रित आहार दें।
- ग्रीष्मकाल में पशुओं की भूख कम हो सकती है व पशु कम भोजन खाते हैं। अत: उन्हें कम भोजन में अधिक ऊर्जा की ज़रूरत हो सकती है। अत: उन्हें तेल इत्यादि भी दे सकते हैं। इसके साथ-साथ पशुओं का पाचन तंत्र भी बिगड़ सकता है, अत: उन्हें सुपाच्य भोजन एवं पर्याप्त मात्रा में पानी भी दें।
- गेहूँ की कटाई के बाद नई तूड़ी आने से पशुओं के पेट में बंधा पड़ सकता है। अत: पशुओं का आहार एकदम से न बदलें और बंधा पड़ने पर चिकित्सीय सलाह से हींग, हरड़, सेंधा नमक, मोटी सौंफ इत्यादि दें।
- गलघोंटू व मुँह-खुर के टीकाकरण सुनिश्चित करें।
- पशुओं को पेट में कीड़े मारने की दवा दें।
- गर्मियों के मौसम में पैदा की गई ज्वार में ज़हरीला पदार्थ हो सकता है, जो पशुओं के लिए हानिकारक है। अप्रैल में बिजाई की गई ज्वार के खिलाने से पहले खेत में 2-3 बार पानी अवश्य लगाएं।

भेड़ें

- पिछले माह में भेड़ के ऊन कतरने का कार्य न किया हो तो इस माह में कर लें।
- भेड़ के शरीर को ऊन कतरने के 21 दिन बाद, बाह्य परजीवियों से

बचाने के लिये कीटाणुनाशक घोल से भिगोएं। इसके लिए अपने पशु चिकित्सक की सलाह से उन्हें समय-समय पर दवाई पिलाएं।

- भेड़ों में रोगों से बचाव के लिए टीकाकरण नज़दीकी पशु चिकित्सालय से करवाएं।
- भेड़ तथा ऊन विकास केन्द्र में बने डिपिंग टैंक में अपनी भेड़ों को नहलाएं।
- इस माह में भेड़ों का प्रजनन चलेगा। अत: अच्छी नस्ल के बच्चे उत्पन्न कराने हेतु अच्छी नस्ल के मेंड़े भी भेड़ तथा ऊन विकास केन्द्र से प्राप्त हो सकते हैं।

फार्म प्रबन्ध/विस्तार शिक्षा

कृषि उत्पादों का अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए उचित ढंग से मण्डीकरण करें। रबी फसलों की जिन्सों का अच्छा भाव लेने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें।

1. कटाई के बाद किसान, अपनी उपज को एक साथ ही मण्डियों में न लाकर उसे धीरे-धीरे लाएं, जिससे उन्हें कठिनाई न उठानी पड़े तथा उनकी उपज का सही मूल्य उन्हें मिल सके।
2. फसल को जहां तक संभव हो सरकारी संस्था अथवा सहकारी सोसायटी द्वारा बेचें तथा यह ध्यान रखें कि उपज का न्यूनतम मूल्य प्राप्त हो।
3. अच्छी कीमत प्राप्त करने के लिए उपज को साफ-सुथरा करके तथा अच्छी बोरियों में भरकर मण्डी में लाएं। इससे मण्डी में भराई-सफाई का अतिरिक्त खर्चा नहीं लगेगा।
4. किसान को अधिक कीमत प्राप्त करने के लिए बढिया और घटिया किस्म की फसलों को अलग-अलग बेचना चाहिए।
5. किसानों को चाहिए कि वह अपनी फसल मण्डी में तोलकर ले जाएं और बाद में पड़ताल के लिए तोल कराएं।
6. फसल को ग्रेड करा लेने के बाद उसकी उचित कीमत लगती है। कृषि विभाग द्वारा प्रमुख मण्डियों में कृषि उत्पादों की ग्रेडिंग के लिए केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन केन्द्रों पर किसानों की उपज की नि:शुल्क ग्रेडिंग सुविधा उपलब्ध है।
7. विभिन्न जिन्सों (फसलों) के मिश्रण को मण्डी में नहीं ले जाना चाहिए। उनको अलग-अलग बेचने पर ही अधिक लाभ होता है। जैसे गेहूँ व जौ के मिश्रण की बजाय उन्हें अलग-अलग बेचने पर ही अधिक लाभ होता है।
8. फसल बेचने से पहले मण्डी के भाव की जानकारी लेना अति आवश्यक है। किसान को विभिन्न मण्डियों के भाव की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। यह जानकारी अखबार, रेडियो का कृषि कार्यक्रम अथवा व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से प्राप्त हो सकती है।
9. जो किसान भाई अपनी जिन्स को रोककर देर से बेचने की क्षमता रखते हैं तथा जिनके पास जिन्स के भण्डारण की उचित व्यवस्था है उन्हें फसल काटते ही मण्डी लेकर नहीं पहुंचना चाहिए। जिन्स की कम आवक होने पर बेचने से भाव अच्छे मिल जाते हैं व परेशानी भी कम उठानी पड़ती है।

घर-आंगन में

गर्मी के मौसम में बच्चों के शरीर से दस्त एवं उल्टियों के रूप में लगातार पानी निकलने से निर्जलन हो जाता है जिससे बच्चे की आंखें धंस जाती हैं तथा निर्जलन के गम्भीर मामलों में सिर का तालू गिरने लगता है। बच्चा पेशाब कम करता है तथा सुन्न पड़ जाता है तथा बेहोश हो जाता है। बच्चा श्वास भी जल्दी-जल्दी तथा कठिनाई से लेता है। माँ को ऐसी स्थिति आने ही नहीं देनी चाहिए। अगर बच्चे को चार-पांच पतले दस्त आ गए हों तो शीघ्र ही उसे नमक एवं चीनी का घोल बनाकर देना चाहिए। इससे उसमें पानी की कमी नहीं आएगी तथा बच्चे की हालत भी सुधरेगी। नमक व चीनी का घोल बनाने के लिए तीन चुटकी भर नमक, एक मुट्ठी भर चीनी, उबला और ठंडा किया हुआ पांच कप पानी में अच्छी तरह मिलाएं। यदि उपलब्ध हो तो आधे खट्टे नींबू का रस भी मिलाएं।

अतिसार में बच्चों को खिलाना-पिलाना जारी रखना बहुत आवश्यक है। खाना-पिलाना जारी रखने से बच्चे जल्दी अच्छे हो जाते हैं और कुपोषण का शिकार नहीं होते। नमक और चीनी के घोल के साथ-साथ छोटे बच्चे का स्तनपान भी जारी रखें। बड़े बच्चे जो गाय-भैंस का दूध पीते हैं उन्हें बिना पानी मिलाए दूध देना जारी रखें। इसके अतिरिक्त चावल का पानी, दाल का पानी, मूंग की धुली हुई दाल, ताज़ा बना हुआ खाना जैसे खिचड़ी, दलिया आदि थोड़ा-सा घी अथवा तेल डालकर ही पकाएं। दही, केला, और उबला हुआ आलू भी दें। यदि इतना कुछ करने पर भी बच्चे की स्थिति में सुधार नहीं आता तो आप नज़दीकी हस्पताल से संपर्क स्थापित करें।

इस महीने में अत्यधिक गर्मी होने के कारण ज़्यादा से ज़्यादा शुद्ध जल का प्रयोग करें। ताकि आप अपने आपको दूषित जल से होने वाली बीमारियों से बचा सकें। शुद्ध जल के लिए आप जनता वाटर फिल्टर का प्रयोग कर सकते हैं। इसको कैसे बनाया जाए, इसके लिए आप अपने क्षेत्र में कार्यरत ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) से संपर्क स्थापित करें। इसके अतिरिक्त आप पानी को साफ करने के लिए क्लोरीन की गोलियां नज़दीकी हस्पताल से भी ले सकते हैं।

- कच्चे आम के पन्ने का प्रयोग करके आप अपने आपको एवं परिवार को लू से बचा सकते हैं।
- सिरके में प्याज़ का प्रयोग करके आप अपने आपको एवं परिवार को लू से बचा सकते हैं।
- गर्मी में सूती वस्त्रों का प्रयोग करें तथा खेती के कार्यों में सुरक्षात्मक वस्त्रों का उपयोग करें। लू से बचाव के लिए हमेशा घर से पानी का सेवन करके निकलें। ●

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं : **haryanakhetihau@gmail.com**

गर्मी व लू से फलदार पौधों का बचाव

✍ सुलेमान मोहम्मद एवं अनिल कुमार
कृषि विज्ञान केंद्र, यमुनानगर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गर्मी के मौसम में जब गर्म व शुष्क हवाएं चलती हैं तो पौधों की पत्तियों एवं ज़मीन की सतह से पानी का वाष्पीकरण बड़ी तेज़ी से होता है। इन गर्म व शुष्क हवाओं तथा लू के कारण ज़मीन में तथा पौधों पर पानी की कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। तेज़ लू या आंधी तूफान से कमज़ोर टहनियां व पौधे टूट कर गिर जाते हैं व कई बार पूरे के पूरे पौधे बिल्कुल उखड़ भी जाते हैं. अत: फलदार पौधों की गर्मी व लू से रक्षा निम्नलिखित तरीकों से करें:

हवा रोक बाड़ : जिस खेत में बाग लगा हुआ हो उसकी उत्तर-पश्चिम दिशाओं पर एक मिश्रित लाईन के रूप में 3-4 किस्मों के अलग-अलग ऊंचाई वाले पेड़ लगायें। अधिक ऊंचाई वाले पेड़ जैसे शीशम, सफेदा, देसी आम आदि व कम ऊंचाई वाले जैसे जमोआ, शहतूत, करोंदा आदि बाड़ के लिए अच्छे पेड़ हैं। बरसात के दिनों में खेत की उत्तर-पश्चिम सीमाओं के साथ-साथ दस फुट की दूरी पर अधिक ऊंचाई वाले पौधों की दो लाइनें लगायें ताकि सभी प्रकार के पौधे मिश्रित रूप से लग जाएं।

जन्तर या ढैंचा लगाना : फरवरी-मार्च के महीनों में फलदार पौधों के चारों ओर ढैंचा के बीज बो दिए जाते हैं जो जून-जुलाई के महीनों तक काफी बड़े हो जाते हैं तथा बौनी किस्म के फलदार पौधों को गर्मी व लू से बचाते हैं।

छप्पर बनाना : आमतौर पर फल उत्पादक हवा रोधक बाड़ तैयार नहीं करते, यदि करते भी हैं तो उसी समय जब वे खेत में फलदार पौधे लगाना शुरू करते हैं। परन्तु इस समय यह बाड़ छोटे पौधों (नए) की रक्षा नहीं कर सकती. इसलिए ऐसे बागों में हर एक नए पौधे के उत्तर-पश्चिम में सरकंडे की पत्तियों से या धान की पराली से छट्टियों के साथ छप्पर बना दें और मई-जून के महीने में पौधों के साथ लगा दें।

पलावर क्रिया (मल्चिंग) : गर्मी के दिनों में ज़मीन में नमी बनाये रखने के लिए गुड़ाई करने के बाद ज़मीन को घास-फूस या धान की पराली या लकड़ी के बुरादे या पॉलीथीन शीट से ढक देते हैं। इस क्रिया को पलावर क्रिया कहते हैं। इस तरह ढकने से ज़मीन लू व सूर्य की किरणों के सीधे सम्पर्क में नहीं आती जिससे वाष्पीकरण बहुत कम होता है तथा ज़मीन में नमी लम्बे समय तक बनी रहती है। पलावर क्रिया (मल्चिंग) से खरपतवारों का नियंत्रण भी होता है. अगर पलावर क्रिया पॉलीथीन शीट के अलावा फूस या धान की पराली या लकड़ी के बुरादे से की गई हो तो दीमक का प्रकोप बढ़ सकता है, अत: दीमक की रोकथाम के लिए पलावर क्रिया से पहले क्लोरपाईरिफॉस दवा को सिफारिश अनुसार रेत में मिलाकर पूरे खेत में छिडकें एवं सिंचाई करें।

सिंचाई : ज़्यादा गर्मी व लू के दिनों में पानी का वाष्पीकरण अधिक होता है इसलिए छोटे पौधों को 3-4 दिन के अन्तराल पर तथा बड़े पौधों को 7-8 दिन के अन्तराल पर पानी देते रहना चाहिए।

तनों पर सफेदी करना : पौधे के मुख्य तने पर चूने की गहरी पुताई करें ताकि तने द्वारा गर्मी को ग्रहण करने की शक्ति कम हो जाये। यदि 100

(शेष पृष्ठ 21 पर)

ग्रीष्मकालीन जुताई : कृषि में महत्व

✍ विनोद कुमार एवं सूबेसिंह[1]
कृषि विज्ञान केंद्र, मंडकोला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में पिछले 50 सालों में हरित क्रांति के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। उत्पादन बढ़ने के मुख्य कारण उन्नतशील बीज, उर्वरकों का प्रयोग, सिंचाई के साधनों की उपलब्धता रही है। परंतु इसके साथ-साथ अनेक नई समस्याएं जैसे कि खरपतवार, ज़मीन की उर्वरा शक्ति में कमी, भूमिगत रोग, सूत्रकृमि आदि भी उत्पन्न हुई हैं। खेतों में फसलों की बुवाई के समय बार-बार 15 सैं.मी. के आसपास हैरो आदि यंत्र चलाने से ज़मीन में नीचे एक कड़ी परत बन जाती है, जिससे वर्षा का सम्पूर्ण पानी खेतों द्वारा नहीं सोखा जाता है। इससे पानी खेतों से बाहर निकल जाता है और अपने साथ मिट्टी, आवश्यक पोषक तत्वों, लाभदायक जीवाणु को भी बहा ले जाती है। इन सभी समस्याओं से निजात दिलाने का सर्वोत्तम उपाय ग्रीष्मकालीन जुताई है।

ग्रीष्मकालीन जुताई कब करें : रबी फसलों की कटाई का मुख्य कार्य मार्च के अंतिम सप्ताह या अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक पूर्ण कर लिया जाता है व खरीफ फसलों की बिजाई जून या जुलाई के माह में की जाती है। अत: किसान तेज़ गर्मी के महीनों (मई-जून) में खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से 2 या 3 गहरी जुताई 10-15 दिन के अंतराल पर करके खेत खुला छोड़ दें, जिससे मिट्टी में उपस्थित खरपतवार, कीट, रोगजनक कवक, जीवाणु, व्याधियाँ व सूत्रकृमि आदि कड़ी धूप एवं निर्जलीकरण के कारण नष्ट हो जाएं।

ग्रीष्मकालीन जुताई कैसे करें : गर्मी की जुताई मई या जून माह में जब रबी फसल की कटाई के बाद जब खेत खाली हों तथा खेत में थोड़ी नमी उपलब्ध हो तब किसी भी मिट्टी पलटने वाले हल से 15 सैं.मी. गहराई तक ढलान के विपरीत जुताई करनी चाहिए। अत: खेतों में हल चलाते समय इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि यदि खेत की ढलान पूर्व से पश्चिम दिशा में हो तो जुताई उत्तर से दक्षिण की ओर यानि ढलान के विपरीत ढलान को काटते हुए करनी चाहिए। ऐसा करने से बहुत सारा वर्षा का जल मृदा सोख लेती है और पानी ज़मीन की निचली सतह तक पहुंच जाता है। जिससे न केवल मृदा का कटाव रुक जाता है, बल्कि पोषक तत्वों का ह्रास भी रुक जाता है।

ग्रीष्मकालीन जुताई के प्रमुख लाभ :

- हम सभी जानते हैं कि खरपतवार सभी फसलों में एक जटिल समस्या उत्पन्न करते हैं, जिनके कारण कृषि उत्पादन में 20-60 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। दूब घास, मोथा व कांस आदि ऐसे खरपतवार हैं जिनकी जड़ें ज़मीन में गहरी जाती हैं व सामान्य निराई गुड़ाई से इन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता जबकि ग्रीष्मकालीन जुताई करने से इन्हें पूरी तरह नष्ट कर सकते हैं।
- ग्रीष्मकालीन जुताई करने से अधिकतर भूमि की कठोर परत टूट जाती है, जिससे वर्षा का जल भूमि द्वारा सोख लिया जाता है, जिससे जल का संरक्षण होता है व भूमिगत जलस्तर में भी वृद्धि होती है।
- ग्रीष्मकालीन जुताई करने के बाद हानिकारक कीट व फसल के रोगाणु भूमि की सतह पर ऊपर आ जाते हैं, जो सूर्य की तपन व भूमि की गर्मी के कारण नष्ट हो जाते हैं। ●

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

स्वर्ग का वृक्ष -सिमरु बाग्लौका (चमत्कारी वृक्ष/लक्ष्मीतरु)

✍ **बिमलेन्द्र कुमारी, प्रीति सिंह एवं ज्योति**[1]
वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वृक्ष की उपलब्धता व प्राकृतिक विस्तार : 1960 के दशक में मध्य अमेरिका के उष्ण कटिबंधीय जंगलों से लाया गया, लक्ष्मीमतरु अब दक्षिण महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, गुजरात, राजस्थान और पश्चिम बंगाल व अन्य राज्यों में भी उगाया जा रहा है।

जलवायु : इस वृक्ष को 500-2200 मि.मी. की वार्षिक वर्षा और 10-50 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है।

वनस्पति वर्ष : इस पेड़ पर लगभग तीन साल की उम्र में फूल और फल आ जाते हैं। इस पेड़ पर प्रत्येक वर्ष दिसंबर से फरवरी तक फूल आते हैं और यह लगातार बढता रहता है। मार्च/अप्रैल तक इसके फल तोड़ने लायक हो जाते हैं।

बीज परिपक्वता और बीज संग्रह : फल लगाने के 11-17 सप्ताह बाद, बीज परिपक्व व तैयार होते हैं व पक कर ज़मीन पर गिरने लगते हैं। फल जब हरे पीले से काले बैंगनी रंग में बदल जाते हैं तब इन्हें पेड़ से इकट्ठा किया जाता है, व संग्रह किया जाता है।

बीज निकालना : बीजों की ग्रेडिंग करके अधिकतम बीज की गुणवत्ता के लिए अविकसित, अपरिपक्व और क्षतिग्रस्त बीजों को अलग करें और हरे फलों का भी त्याग करें। संग्रह के तुरन्त बाद फलों का गूदा निकालना चाहिए। एक बाल्टी में फलों को हाथ से पकड़ कर इनका गूदा निकाला जाता है। बाल्टी में पानी डालने पर फल की त्वचा पानी पर तैरने लगती है।

बीजों को सुखाना : बीजों को निकालने के तुरंत बाद बीज को कुछ घंटों के लिए छाया में सुखाना चाहिये और बाद में नमी को कम करने के लिये धूप में सुखाना चाहिये। बीजों को हमेशा एक ही परत में फैलाना चाहिये। बीज का प्रारंभिक नमी स्तर 12-15 प्रतिशत है।

भंडारण और व्यवहार्यता : इस वृक्ष के बीजों को कम तापमान पर संग्रहीत किया जाता है तो यह कई वर्षों तक उच्च व्यवहार्यता बनाये रखते हैं। बीजों को 9-12 महीने के लिए संग्रहीत किया जा सकता है। ताज़ा बीज का अकुंरण 70-80 प्रतिशत है।

नर्सरी तकनीक : यह सामान्य रूप से मिट्टी की सतह पर अंकुरित होता है। कंटेनर रोपाई बढ़ाने के लिए, नर्सरी मिश्रण (मिट्टी : रेत : गोबर की खाद : 3 : 1 : 1) के साथ पॉलीबैग्स (15x25 सैं.मी. आकार) में बोयें। बीज बुवाई के 15वें दिन अंकुरित होने लगता है और अंकुरण पूरा होने में 25 दिन लगते हैं। ठंडे पानी में 24 घंटे बीज को रखने से इसकी अंकुरण क्षमता भी बढाई जा सकती है।

मदर बेड़ में बुवाई : एक उभरा हुआ नर्सरी बैड़ 10 मीटरx 1 मीटर के आकार में तैयार किया जाता है। आमतौर पर बीजों को 10-15 सैं.मी. की दूरी पर बनाई लाइनों और 3-5 सैं.मी. की दूरी पर बोया जाता है।

पौध को बाहर निकालना : जब पौध 7-10 सैं.मी. लंबी और मुख्य जड़ लगभग 15 सैं.मी. लंबी (बुवाई के 40-50 दिन बाद) हो जाती है तो यह रोपाई के लिए तैयार होती है।

निराई : अच्छे रोपन स्टॉक के उत्पादन की सफलता के लिए नियमित और कुशल निराई आवश्यक होती है।

स्टंप की तैयारी : 10-12 महीने पुराने पौधों से तैयार किए गए स्टंप के 2-5 सैं.मी. शूट और 20 सैं.मी. जड़ से अच्छी स्थापना होती है।

रोपण : छः महीने पुराने पौध मुख्य खेत में रोपण के लिए उपयुक्त होते हैं। क्षेत्र की तैयारी जून-जुलाई के दौरान दक्षिण-पश्चिम मानसून की मदद से की जानी चाहिए। पौधों को 6x 6 मीटर (277 पेड़/हैक्टेयर) दूरी पर गड्ढों में लगाना चाहिए।

वानस्पतिक प्रवर्धन : सॉफ्ट वुड क्लैफट (फांक) ग्राफ्टिंग और एयर लेयरिंग (गूटी बांधना) से 80 फीसदी सफलता मिलती है।

उपज : इसमें 3 या 4 वर्ष में फल आ जाते हैं लेकिन पेड़ 10 वें वर्ष से 20 किलोग्राम/पेड़ उपज देता है।

वृक्ष के उपयोग : स्वर्ग का पेड़ उर्फ लक्ष्मी तरु बहु उपयोगी सदा बहार वृक्ष है जो भविष्य में एक आशा जनक ऊर्जा फसल और औषधीय पौधे के रूप में जाना जा सकता है। इस पेड़ के पत्तों से कैंसर तक का इलाज संभव है और एनीमिया, आंखों के रोग, रक्तस्राव, अंदरुनी फोडा, गैस एसिडिटी, हाइपर एसिडिटी, पाचन प्रणाली, डायरिया, चिकनगुनियां, कोलाइटिस, हेपेटाइटिस, सामान्य बुखार एवं मलेरिया जेसे अनेक रोगों को भी बहुत जल्दी ठीक करता है।

सिमरु बाग्लौका के बीजों में 50-60 प्रतिशत खाद्य तेल होता है, जिसका उपयोग वनस्पति के निर्माण में किया जाता है, औद्योगिक तेल के रूप में, यह गुणवत्ता वाले साबुन, स्नेहक, पेंट, पॉलिश, फार्मास्यूटिकल्स आदि के निर्माण के लिए उपयुक्त है। ●

[1]बागवानी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

(पृष्ठ 20 का शेष)

लीटर चूने के पानी में 300 ग्राम ब्लाइटॉक्स मिलाकर पुताई करें तो तने पर बीमारियां भी कम लगेंगी।

नाजुक पौधे बाग के बीच लगाना : अधिक गर्मी व लू से अधिक प्रभावित होने वाले फलदार पौधे जैसे लीची, पपीता, लोकाट आदि को बाग के बीच में लगायें ताकि ये नाजुक पौधे लू से कम प्रभावित हों।

पौधे को स्वस्थ व मज़बूत बनाना : अगर पौधा अच्छी बढवार वाला व मज़बूत होगा तो उसमें लू व अधिक गर्मी को सहने की शक्ति अधिक होगी। इसलिए सिफारिश अनुसार पौधों में खाद, पानी, काट-छांट, निराई-गोड़ाई तथा कीड़े व बीमारियों की रोकथाम समय-समय पर करते रहें ताकि पौधे स्वस्थ व मज़बूत बने रहें और गर्मी व लू से अधिक प्रभावित न हों। ●

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें। **सह-निदेशक प्रकाशन**

जैविक खेती के लाभ और उपाय

✍ नेहा, वि. कुमार[1] एवं एम. एस. जटाना
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्ष 2004-05 में पहली बार जैविक खेती पर राष्ट्रीय परियोजना की शुरुआत की गई एवं इसे लगभग 42 हज़ार हैक्टेयर में अपनाया गया, जिसका रकबा मार्च 2014 तक बढ़कर करीब 11 लाख हैक्टेयर हो गया। इसके अतिरिक्त 34 लाख हैक्टेयर जंगलों से फसल प्राप्त होती है इस तरह कुल 45 लाख हैक्टेयर में जैविक उत्पाद उत्पन्न किये जा रहे हैं । यह एक सर्वविदित तथ्य है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती है। हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। अधिक उत्पादन के लिए खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता है, जिससे सामान्य एवं छोटे कृषक के पास कम जोत में अत्यधिक लागत लग रही है और जल, भूमि, वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहे हैं। साथ ही खाद्य पदार्थ ज़हरीले हो रहे हैं।

भारत दुनिया में कपास का सबसे बड़ा जैविक उत्पादक है। पूरी दुनिया में सबसे बड़ा जैविक कपास का 50% उत्पादन समूहों के अंतर्गत आने वाले करीब 6 लाख टन विभिन्न जैविक उत्पाद पैदा करते हैं। 18 लाख टन जैविक उत्पादों में से करीब 561 करोड़ रुपये मूल्य के 54 हजार टन जैविक उत्पादों का निर्यात किया जाता है

जैविक खेती क्या है : जैविक खेती एक ऐसी पद्धति है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा खरपतवारनाशकों के स्थान पर जीवांश खाद पोषक तत्वों (हरी खाद, गोबर की खाद, केंचुए की खाद, कम्पोस्ट, जीवाणु कल्चर) जैव नाशकों व बायो एजेंट्स जैसे क्राईसोपा आदि का उपयोग किया जाता है जो कि आसपास के वातावरण, पशुओं तथा मानव जाति पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं डालते हैं। इसीलिए कहते हैं कि :

''जैविक खेती से बढ़ जाता है पशु, मानव एवं धरती का प्यार।
जीव अंश पर निर्भर रह कर देती टिकाऊ खेती का आधार।।''

जैविक रुपांतरण में जैविक उपादानों की आवश्यकता : किसी भी खेत को पारंपरिक खेती से जैविक खेती की ओर उन्मुख करने के लिए सबसे पहला कदम है उस मिट्टी की खोई उर्वरता की पुनर्स्थापना। इसके लिए आवश्यक है रासायनिक उपादानों के प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबन्ध तथा जैविक व जीवाणु उपादानों तथा जैविक प्रक्रियाओं का अधिकाधिक प्रयोग। पोषण प्रबंधन तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ने के लिए फसल अवशिष्ट, पशु मल, वनीय घास फूस व पत्ती कचरा, हड्डी खाद, बूचड़ खाने का अवशिष्ट तथा हरी खाद इत्यादि प्रमुख उपादान हैं। अच्छे परिणामों के लिए इन सभी जैवीय पदार्थों का कम्पोस्ट में परिवर्तन आवश्यक है। किसी भी कम्पोस्ट की गुणवत्ता उस के कच्चे माल तथा कम्पोस्ट प्रक्रिया की गुणवत्ता पर निर्भर है।

जैविक खेती से लाभ : किसान एवं पर्यावरण के लिए जैविक खेती लाभ का सौदा है। जैविक खेती से किसानों को कम लागत में उच्च गुणवत्ता पूर्ण फसल प्राप्त हो सकती है। इसके अन्य लाभ निम्नलिखित हैं :

- जैविक खेती से भूमि की गुणवत्ता में सुधार होता है। रासयनिक उर्वरक के उपयोग से भूमि बंजरपन की ओर बढ़ रही है। जैविक खादों से उसमें जिन तत्वों की कमी होती है, वह पूर्ण हो जाती है एवं उसकी गुणवत्ता में अभूतपूर्ण वृद्धि हो सकती है।
- जैविक खादों एवं जैविक कीटनाशकों के उपयोग से ज़मीन की उपजाऊपन में वृद्धि होती है।
- सिंचाई की कम लागत जैविक खेती में आती है क्योंकि जैविक खाद ज़मीन में लम्बे समय तक नमी बनाये रखते हैं, जिससे सिंचाई की आवश्यकता रासायनिक खेती की अपेक्षा कम पड़ती है।
- रासायनिक खादों के उपयोग से ज़मीन के अंदर फसल की उत्पादकता बढ़ाने वाले जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, जिस कारण फसल की उत्पादकता कम हो जाती है। जैविक खाद का उपयोग कर पुन: उस उत्पादकता को प्राप्त किया जा सकता है।
- जैविक खेती से भूमि की जल धारण शक्ति में वृद्धि होती है। रासायनिक खाद भूमि के अंदर के पानी को जल्दी सोख लेते हैं, जबकि जैविक खाद ज़मीन की ऊपरी सतह में नमी बनाकर रखते हैं, जिससे ज़मीन की जल धारण क्षमता बढ़ती है।
- किसान की खेती की लागत रासायनिक खादों की कीमतें आसमान छू रही हैं। जैविक खाद बहुत ही सस्ते दामों में तैयार हो जाता है।
- जैविक खेती से प्रदूषण में कमी आती है। रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों से पर्यावरण प्रदूषित होता है। खेतों के आसपास का वातावरण ज़हरीला हो जाता है, जिससे वहां के वनस्पति, जानवर एवं पशु पक्षी मरने लगते हैं। जैविक खादों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से वातावरण शुद्ध होता है।
- जैविक खेती से उत्पादों की गुणवत्ता रासायनिक खेती की तुलना में कई गुना बेहतर होती है एवं वे उच्च दामों में बाज़ार में बिकते हैं।
- स्वास्थ्य की दृष्टि से जैविक उत्पाद सर्वश्रेष्ठ होते हैं एवं इनके प्रयोग से कई प्रकार के रोगों से बचा जा सकता है।
- जैविक उत्पादों की कीमतें रासायनिक उत्पादों से कई गुना अधिक होती हैं, जिससे किसानों की औसत आय में वृद्धि होती है।

जैविक खेती की एवं रासायनिक खेती की तुलनात्मक उत्पादकता : आंकड़े दर्शाते हैं कि जैविक खेती से फसलों की उत्पादकता रासायनिक खेती की तुलना में करीब 20-25% तक बढ़ जाती है।

जैविक खेती हेतु खाद का निर्माण : रासायनिक खाद फसल के लिए उपयुक्त जीवाणुओं को नष्ट कर देता है। इन सूक्ष्म जीवाणुओं के तंत्र को विकसित करने के लिए जैविक खाद का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे फसल के लिए मित्र जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि, हवा का संचार, पानी को पर्याप्त मात्रा में सोखने की क्षमता में वृद्धि होती है। जैविक खाद बनाने की कुछ प्रमुख विधियां निम्न हैं :

नाडेप विधि : इस विधि में 12 फीट लम्बा, 5 फीट चौड़ा एवं 3 फीट गहरा गड्ढा खोदकर उसमें 75% वनस्पति अवशेष, 20% हरी घास व 5% गोबर 200 लीटर पानी में डालकर अच्छे से मिलाते हैं। इस गड्ढे में कुछ छेद करके उनमें पीएसबी एवं एजेक्टोबेक्टर कल्चर गड्ढे के अंदर डालकर उन छिद्रों को बंद कर देते हैं। 15 से 20 क्विंटल प्रति एकड़ की दर से इस खाद का उपयोग करें। हर 21 दिन बाद इस खाद को डाल सकते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट खाद : फसल में पोषक तत्वों का संतुलन बनाने में

[1]मृदा विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

वर्मी कम्पोस्ट खाद की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। वर्मी कम्पोस्ट खाद को विशेष प्रकार के केंचुओं से बनाया जाता है। इन केंचुओं के माध्यम से अनुपयोगी जैविक वानस्पतिक जीवांशों का अल्प अवधि में मूल्यांकन जैविक खाद का निर्माण करके, इसके उपयोग से मृदा के स्वास्थ्य में आशातीत सुधार होता है एवं मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है, जिससे फसल उत्पादन में स्थिरता के साथ गुणात्मक सुधार होता है।

वर्मी कम्पोस्ट में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाये जाते हैं। वर्मीकपोस्ट पोषण पदार्थों से भरपूर एक उत्तम जैव उर्वरक है। यह केंचुआ आदि कीड़ों के द्वारा वनस्पतियों एवं भोजन के कचरे आदि को विघटित करके बनाई जाती है। वर्मी कम्पोस्ट में बदबू नहीं होती है और मक्खी एवं मच्छर नहीं बनते हैं तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता है। तापमान नियंत्रित रहने से जीवाणु क्रियाशील तथा सक्रिय रहते हैं। वर्मी कम्पोस्ट डेढ़ से दो माह के अंदर तैयार हो जाता है। इसमें 2.5 से 3% नाइट्रोजन, 1.5 से 2% सल्फर तथा 1.5 से 2% पोटाश पाया जाता है ।

हरी खाद : हरी खाद उस सहायक फसल को कहते हैं, जिसकी खेती मुख्यत: भूमि में पोषक तत्वों को बढ़ाने तथा उसमें जैविक पदार्थों की पूर्ति करने के उद्देश्य से की जाती है। प्राय: इस तरह की फसल को इसके हरी स्थिति में ही हल चलाकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। हरी खाद से भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है और भूमि की रक्षा होती है। मृदा में लगातार दोहन से उसमें उपस्थित पौधे की बढ़वार के लिये आवश्यक तत्व नष्ट होते जा रहे हैं। इनकी क्षतिपूर्ति हेतु व मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिये हरी खाद एक उत्तम विकल्प है। बिना गले-सड़े हरे पौधे (दलहनी एवं अन्य फसलों अथवा उनके भाग) को जब मृदा की नत्रजन या जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिये खेत में दबाया जाता है, तो इस क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं।

मटका खाद : गौ मूत्र 10 लीटर, गोबर 10 किलो, गुड़ 500 ग्राम, बेसन 500 ग्राम - सभी को मिलाकर मटके में भरकर 10 दिन सड़ाएं फिर 200 लीटर पानी में घोलकर गीली ज़मीन पर कतारों के बीच छिड़क दें। 15 दिन बाद पुन: इसका छिड़काव करें।

बायोगैस स्लरी : गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद बायोगैस संयंत्र में 25% ठोस पदार्थ रूपांतरण गैस के रूप में होता है और 75% ठोस पदार्थ का रूपांतरण संयंत्र में 50 किलोग्राम प्रतिदिन या 18.25 टन गोबर एक वर्ष में डाला जाता है। उस गोबर में 80% नमीयुक्त करीब 10 टन बायोगैस स्लेरी का खाद प्राप्त होता है। ये खेती के लिये अति-उत्तम खाद होता है। इसमें 1.5 से 2% नत्रजन, 1% स्फुर एवं 1% पोटाश होता है।

बायोगैस संयंत्र में गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद 20% नाइट्रोजन अमोनियम नाइट्रेट के रूप में होता है। अत: यदि इसका तुरंत उपयोग खेत में सिंचाई नाली के माध्यम से किया जाये, तो इसका लाभ रासायनिक खाद की तरह फसल पर तुरंत होता है और उत्पादन में 10-20% बढ़त हो जाती है।

स्लरी के खाद में नत्रजन, स्फुर एवं पोटाश के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषण तत्व एवं ह्यूमस भी होता है, जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है तथा जल धारण क्षमता बढ़ती है। सूखी खाद की असिंचित खेती में 5 टन एवं सिंचित खेती में 10 टन प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होगी। ताज़ी गोबर गैस स्लरी सिंचित खेती में 3-4 टन प्रति हैक्टेयर में लगेगी। सूखी खाद का उपयोग सिंचाई के दौरान करें। स्लरी के उपयोग से फसलों को तीन वर्ष तक पोषक तत्व धीरे-धीरे उपलब्ध होते रहते हैं।

जैविक कीट एवं व्याधि नियंत्रण :

1. देशी गाय के 5 लीटर मट्ठे में 5 किलो नीम के पत्ते डालकर 10 दिन तक सड़ाएं, बाद में नीम की पत्तियों को निचोड़ लें। इस नीम युक्त मिश्रण को छानकर 150 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ के मान से समान रूप से फसल पर छिड़काव करें। इससे इल्ली व माहु का प्रभावी नियंत्रण होता है।
2. 5 लीटर मटठे में, 1 किलो नीम के पत्ते व धतूरे के पत्ते डालकर 10 दिन सड़ने दें। इसके बाद मिश्रण को छानकर इल्लियों का नियंत्रण करें।
3. 5 किलो नीम के पत्ते 3 लीटर पानी में डालकर उबाल लें, जब आधा रह जाए, तब उसे छानकर 150 लीटर पानी में घोल तैयार करें। इस मिश्रण में 2 लीटर गौ-मूत्र मिलाएं। अब यह मिश्रण एक एकड़ के मान से फसल पर छिड़कें।
4. 1/2 किलो हरी मिर्च व लहसुन पीसकर 150 लीटर पानी में डालकर छान लें तथा एक एकड़ में इस घोल का छिड़काव करें।
5. मारुदाना, तुलसी (श्यामा) तथा गेंदे के पौधे फसल के बीच में लगाने से इल्ली का नियंत्रण होता है।
6. गोमूत्र, कांच की शीशी में भरकर धूप में रख सकते हैं। जितना पुराना गोमूत्र होगा, उतना अधिक असरधारी होगा। 12-15 मि.मि. गोमूत्र प्रति लीटर पानी में मिलाकर स्प्रेयर पंप से फसलों में बुवाई के 15 दिन बाद, प्रत्येक 10 दिवस में छिड़काव करने से फसलों में रोग एवं कीड़ों में प्रतिरोधी क्षमता विकसित होती है, जिससे प्रकोप की संभावना कम रहती है।
7. 100-500 मि.ली. छाछ 15 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से कीट-व्याधि का नियंत्रण होता है। यह उपचार सस्ता, सुलभ, लाभकारी होने से कृषकों में लोकप्रिय है।

जैविक खेती की स्थिति पर नज़र : विभिन्न प्रदेशों की सरकारें जैविक खेती को प्रोत्साहित कर रही हैं। मध्यप्रदेश में 1565 गांवों में पूरी तरह से जैविक खेती हो रही है। प्रदेश में 29 लाख हैक्टेयर भूमि जैविक खेती के लिए उपयुक्त पाई गई है। प्रदेश में जैविक क्षेत्रों का चयन किया जा रहा है। बेस लाइन सर्वे कर जैविक खेती करने वाले कृषक समूहों का निर्माण एवं पंजीयन किया जा रहा है।

कृषि विभाग द्वारा क्षेत्रों के अनुसार जैविक फसलों का चयन, नि:शुल्क मिट्टी का परीक्षण, जैविक खेती के लिए भुसुधार हेतु चूना, रॉक फॉस्फेट, एवं कम्पोस्ट उपयोग हेतु प्रोत्साहन अनुदान, जैविक खाद, एवं जैविक कीट नियंत्रण, प्रोत्साहन अनुदान, ऑनफार्म जैविक खाद हेतु कृषकों को सहायता एवं विभागीय अमले व् कृषकों को जैविक खेती की प्रशिक्षण योजना से जैविक खेती के विस्तारीकरण में तेज़ी आई है।

जैविक खेती से उत्पन फसल न केवल स्वास्थ्य के लिए वरन पर्यावरण के लिए भी अनुकूल होती है जैविक कृषि पद्धति से सामाजिक समरसता बढ़ कर अप्रत्यक्ष रूप से देश के आर्थिक विकास में सहभागी बन सकती है।

हमारे स्वास्थ्य एवं सर्वांगीण विकास के लिए यह ज़रूरी है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हों एवं शुद्ध वातावरण के साथ पोषक आहार मिले, इन सबका आधार सिर्फ जैविक खेती है। ●

भूमि क्षरण का गहराता संकट : कारण एवं निवारण

✍ **प्रमोद शर्मा, संजय कुमार एवं कनिष्क वर्मा**
मृदा एवं जल अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भूमि एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जो हमें भोजन, ईंधन, चारा एवं लकड़ी प्रदान करती है। दुर्भाग्यवश भारत में सदियों से खाद्यान्न उत्पादन हेतु भूमि का शोषण किया गया है जो भूमि क्षरण के प्रमुख कारणों में से एक है। भूमि क्षरण के फलस्वरूप उसकी उपजाऊ क्षमता खत्म हो जाती है जिसके कारण उपजाऊ भूमि बंजर भूमि में तब्दील हो जाती है। क्षरित भूमि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के लिए बहुत बड़ी हानि है। भारत में विभिन्न कारणों से भूमि क्षरण की दर में लगातार वृद्धि हो रही है। सिकुड़ते भूमि संसाधन आज भारत जैसे विकासशील देश के लिए सबसे बड़ी समस्या हैं। देश में मनुष्य भूमि अनुपात मुश्किल से 0.48 हैक्टेयर प्रति व्यक्ति है जो दुनिया के न्यूनतम् अनुपातों में से एक है।

क्षरित भूमि के अन्तर्गत अपरदित भूमि, लवणीय एवं क्षारीय भूमि, जलजमाव से प्रभावित भूमि, बीहड़ भूमि, खनन गतिविधियों से प्रभावित भूमि आदि शामिल हैं। भारत की कुल भूमि क्षेत्रफल 329 मिलियन हैक्टेयर है जिसमें से लगभग 178 मिलियन हैक्टेयर भूमि (54 प्रतिशत) विभिन्न कारणों से बंजर भूमि में परिवर्तित हो चुकी है। इसमें लगभग 40 मिलियन हैक्टेयर क्षरित वन भी सम्मिलित हैं। देश की कुल कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल 144 मिलियन हैक्टेयर है जिसमें लगभग 56 प्रतिशत (80.6 मिलियन हैक्टेयर) गलत कृषि कार्यों के परिणामस्वरूप बेकार या बंजर हो चुकी है और अब घने वन सिकुड़कर कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का केवल 11 प्रतिशत (36.2 मिलियन हैक्टेयर) रह गये हैं।

वर्तमान में भारत में मृदा अपरदन (Soil Erosion) की दर लगभग 2,600 मिलियन टन प्रतिवर्ष है। देश की लगभग 140 मिलियन हैक्टेयर भूमि, जल तथा वायु मृदा अपरदन से प्रभावित है जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी की ऊपरी परत की हानि की दर लगभग 6,000 मिलियन टन प्रतिवर्ष है जिसमें 5.53 मिलियन टन नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा होती है।

भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग एक-चौथाई भाग जल अपरदन से प्रभावित है। देश में सिर्फ जल अपरदन द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 6,000 टन ऊपरी मिट्टी का कटाव होता है जिसमें पोषक तत्वों की मात्रा की अनुमानित कीमत 1,000 करोड़ रुपये से भी अधिक की होती है।

जल द्वारा मृदा अपरदन दक्षिण एवं पूर्वी भारत के लाल एवं लैटराइट मृदा की एक प्रमुख समस्या है जहां तकरीबन 40 टन प्रति हैक्टेयर की दर से मिट्टी की ऊपरी सतह का ह्रास प्रतिवर्ष होता है। मध्य भारत की काली मिट्टी के कुल क्षेत्रफल 70 मिलियन हैक्टेयर का लगभग 6.7 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पहले से ही मृदा अपरदन के चलते बेकार हो चुका है। उत्तरी-पूर्वी भारत की लगभग 4.4 मिलियन हैक्टेयर भूमि झूम कृषि (स्थानान्तरी कृषि) के कारण गंभीर भूमि क्षरण से प्रभावित है।

भारत में तीव्र जल अपरदन के कारण लगभग 3.67 मिलियन हैक्टेयर भूमि बीहड़ भूमि में तब्दील हो चुकी है। बीहड़ मुख्यत: उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और गुजरात राज्य में फैले हैं। यमुना, चम्बल, माही, बेतवा, साबरमती तथा उनकी सहायक नदियां इन राज्यों में भूमि अपरदन के लिए उत्तरदायी हैं। एक संरक्षित अनुमान के अनुसार भारत में बीहड़ भूमि पुनरूत्थान न होने के कारण प्रतिवर्ष लगभग 157 करोड़ रुपये का घाटा हो रहा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के बीहड़ क्षेत्रों की अनाज उत्पादन क्षमता तकरीबन 3 मिलियन टन प्रतिवर्ष है।

देश की कुल लवण प्रभावित भूमि का लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्रफल सिन्धु गंगा मैदानों के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, हरियाणा तथा पंजाब राज्यों में वितरित है।

वायु अपरदन आमतौर से देश के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों की समस्या है जहां की मिट्टी मुख्यत: बलुई होती है जिसके कारण पेड़-पौधे कम संख्या में उगते हैं या पूर्णत: अनुपस्थित होते हैं। भारत में वायु अपरदन से लगभग 50 मिलियन हैक्टेयर भूमि प्रभावित है जिसमें से अधिकतर भाग राजस्थान एवं गुजरात राज्य के अन्तर्गत आते हैं। इन क्षेत्रों में अत्यधिक चराई भूमि अपरदन का एक प्रमुख कारण है। एक अनुमान के अनुसार वायु अपरदन से प्रभावित इन क्षेत्रों में अपरदन के नियन्त्रण में लगभग 3,000 करोड़ रुपये का खर्च आयेगा।

भूमि क्षरण के कारण: जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, शहरीकरण, वनविनाश, अत्यधिक चराई, झूम कृषि तथा खनन गतिविधियां भूमि संसाधनों के क्षरण के प्रमुख कारण हैं। इनके अतिरिक्त रासायनिक उर्वरकों एवं नाशकजीवनाशकों (पेस्टीसाइड्स) पर आधारित पारम्परिक कृषि भी भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण है। हरित क्रान्ति के आगमन से कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए रासायनिक खादों, कीटनाशकों तथा शाकनाशकों के अंधाधुन्ध प्रयोग से न केवल वातावरण प्रदूषित हुआ है, अपितु भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीवों की जनसंख्या में भी लगातार गिरावट दर्ज की गयी है जिससे मृदा की पैदावार शक्ति में कमी आयी है।

अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों विशेषकर यूरिया के प्रयोग से भूमि अम्लीय हो जाती है। अम्लीय मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे कॉपर तथा ज़िंक पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की मृदा में आमतौर से कैल्शियम तथा पोटैशियम तत्वों का अभाव होता है। इसलिए इस प्रकार की मृदा में फसल की पैदावार में गिरावट आ जाती है।

रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुन्ध प्रयोग से मृदा संरचना नष्ट हो जाती है जिससे मृदा के कण एक दूसरे से अलग हो जाते हैं परिणामस्वरूप मृदा अपरदन की दर में तीव्र वृद्धि की सम्भावना बढ़ जाती है।

कृषि में जल के अत्यधिक प्रयोग से जलजमाव के कारण मृदा की लवणता एवं क्षारीयता में वृद्धि होती है जिससे उपजाऊ भूमि उसर भूमि में परिवर्तित हो जाती है। सिंचाई जल के कुप्रबन्धन के कारण देश की लगभग 6 मिलियन हैक्टेयर भूमि जल जमाव से प्रभावित है तथा तकरीबन 7 मिलियन हैक्टेयर भूमि लवणता एवं क्षारीयता से प्रभावित है।

भूमि क्षरण का निवारण: भूमि जैसे महत्वपूर्ण संसाधन का क्षरण देश के समक्ष एक गम्भीर समस्या है। अत: इस समस्या का निराकरण समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो निकट भविष्य में देश में खाद्यान्न उत्पादन की दर में गिरावट होगी, परिणामस्वरूप आर्थिक विकास अवरुद्ध होगा और 125 करोड़ की आबादी वाले देश भारत में भूख और कुपोषण के चलते मृत्यु दर में अभूतवपूर्व बढ़ोत्तरी होगी। यद्यपि 1950 की तुलना में (लगभग 51 मिलियन टन) आज देश की कुल खाद्यान्न उत्पादन क्षमता में पांच गुना से अधिक वृद्धि हुई है (लगभग 259 मिलियन टन)।

फिर भी बढ़ती जनसंख्या एवं मांग को देखते हुए खाद्यान्न उत्पादन

बढ़ाने की आवश्यकता है क्योंकि देश की लगभग 42 करोड़ आबादी आज भी अत्यन्त ही गरीब होने के कारण भूखमरी एवं कुपोषण की शिकार है। इसलिए उपजाऊ भूमि का संरक्षण तथा क्षरित भूमि का पुनरुत्थान अत्यन्त ही आवश्यक है ताकि देश में खाद्यान्न उत्पादन को और बढ़ाया जा सके जिससे कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था को और सुदृढ़ किया जा सके।

इसके लिए आवश्यक है कि पारम्परिक कृषि के स्थान पर संपोषित कृषि को अपनाया जाये जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, शाकनाशकों आदि का प्रयोग केवल आवश्यकता पड़ने पर सीमित मात्रा में होता है। संपोषित कृषि में मृदा की उर्वरा शक्ति की वृद्धि के लिए हरी खाद, गोबर खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद, जैविक खाद आदि का उपयोग होता है जिससे मिट्टी का स्वास्थ्य बना रहता है परिणामस्वरूप मृदा संरक्षण को बढ़ावा मिलता है। साथ ही क्षरित अथवा बंजर भूमि को वनस्पतियों से आच्छादित कर उसे उपजाऊ बनाना तकनीकी दृष्टि से पिछड़े भारत जैसे देश के लिए भूमि पुनरूत्थान की सस्ती एवं उत्तम विधि है। इस प्रकार की भूमि पुनरूत्थान विधि को जैविक-पुनरूत्थान विधि के नाम से जाना जाता है।

जल अपरदन से प्रभावित कृषि भूमि का संरक्षण एवं पुनरूत्थान घास की प्रजातियों जैसे दूब (*साइनोडान डेक्टिलान*), अंजान (*सिनक्रस सिलिएटस*) तथा मुंज (*सैक्रम मुंजा*) के रोपण से किया जा सकता है। उक्त घास की प्रजातियां आमतौर से बहुवर्षीय एवं कठोर प्रवृत्ति की होती हैं। इनकी जड़ें मिट्टी के कड़ों को बांधकर मृदा अपरदन को रोकने में सहायक होती हैं। घासों के निरन्तर उगने से मृदा में जीवांश पदार्थ की वृद्धि होती है जिससे मृदा संरचना में सुधार के साथ-साथ उसकी उपजाऊ क्षमता में भी वृद्धि होती है।

देश के शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में वायु अपरदन एक गम्भीर समस्या है। वायु अपरदन से प्रभावित भूमि को मेंहदी (*लावसोनिया एल्बा*), कनेर (*थीबेटिया नेरीफोलिया*), आक (*कैलोट्रापिस प्रोसेरा*), मदार (*कैलोट्रापिस जाईजेण्टिया*) अरण्ड (*रीसिनस कम्यूनिस*), बेर (*जीजीफस मारिसियाना*), खैर (*अकेसिया कटेचू*), सफेद कीकर (*अकेसिया ल्यूकाफोलिया*) शीशम (*डेलबर्जिया शीशू*), इमली (*टेमरिण्डस इण्डिका*) तथा खेजरी (*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*) जैसे कठोर पौधों की प्रजातियों के रोपण से संरक्षण प्रदान किये जाने की तत्काल आवश्यकता है।

यद्यपि बीहड़ भूमि का पुनरूत्थान मुश्किल कार्य है बावजूद इसके खैर (*अकेसिया कटेचू*), खेजरी (*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*), पलास (*ब्यूटिया मोनोस्परमा*), शिरीष (*एल्बिजिया लिबेक*), नीम (*एजाडिराक्टा इण्डिका*), शीशम (*डेलबर्जिया शीशू*), चिलबिल (*होलोप्टीलिया इन्ट्ग्रीफोलिया*), करंज (*पानगैमिया पिन्नेटा*) तथा नरबॉस (*डेण्ड्रोकेलैमस स्ट्रिक्ट्स*) जैसी काष्ठीय प्रजातियों का रोपण कर बीहड़ भूमि को स्थिरता प्रदान किये जाने की आवश्यकता है ताकि बीहड़ भूमि विस्तार को रोका जा सके।

यद्यपि खनन गतिविधियां पर्यावरण के दृष्टिकोण से हानिकारक होती हैं परन्तु आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त ही आवश्यक होती हैं। खनन गतिविधयों के कारण भूमि में ज़बरदस्त उलटफेर होता है फलस्वरूप नीचे की मृदा जिसमें पोषक तत्वों तथा कार्बनिक पदार्थो का अभाव होता है ऊपर आ जाती है जबकि इसके विपरीत ऊपर की उपजाऊ मृदा की परत नीचे चली जाती है। इस प्रकार खनन कार्य से प्रभावित भूमि की उपजाऊ क्षमता शून्य हो जाती है।

खनिज सम्पदा सम्पन्न भारत में खनन गतिविधियां भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण हैं। खननकार्य से अव्यवस्थित भूमि का पुनरूत्थान उस क्षेत्र विशेष में पायी जाने वाली वृक्षों की देसी प्रजातियों से किये जाने की आवश्यकता है। जैसे उष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए शीशम (*डेलबर्जिया शीशू*), करंज (*पानगैमिया पिन्नेटा*), खैर (*अकेसिया कटेचू*), सागौन (*टेक्टोना ग्राण्डिस*), अर्जुन (*टर्मिनेलिया अर्जुना*), बहेड़ा (*टर्मिनेलिया बेलेरिका*), आंवला (*फाइलैन्थस एम्बिलिका*), शिरीष (*एल्बिजिया लिबेक*), सफेद शिरीष (*एल्बिजिया प्रोसेरा*), घमार (*मेलाइना आरबोरिया*) तथा नीम (*एजाडिराक्टा इण्डिका*) जैसे वृक्षों की प्रजातियां जैविक-पुनरूत्थान प्रक्रिया के लिए उत्तम होती हैं।

वृक्षों के अतिरिक्त दीनानाथ (*पेनिसिटम पेडीसिलेटम*) एवं चुराट (*हेट्रोपोगान कनटार्ट्स*) जैसी देसी प्रजाति की घासें भी इस प्रकार की जलवायु के लिए अति उत्तम होती हैं। उपर्युक्त वनस्पतियां खनन गतिविधियों से अव्यवस्थित भूमि को स्थिरता प्रदान करने के साथ-साथ मृदा पुनर्विकास प्रक्रिया में सहायक होती हैं।

नीलहरित शैवाल (सूक्ष्मजीवी पौधे) लवणीय एवं क्षारीय भूमि के पुनरूत्थान में अत्यन्त ही कारगर होते हैं। नीलहरित शैवालों जैसे- नास्टाक, एनाबीना, अलोसाइरा, साइटोनीमा, सिलेण्ड्रोस्परमम ग्लियोट्राइकिया, आसैलिटोरिया, ग्लियोकैप्सा तथास्टाइगोनीमा की प्रजातियां आमतौर से लवणीय एवं क्षारीय मृदा की सतह पर आसानी से उगती हैं जिसके फलस्वरूप न केवल जीवांश पदार्थो की मात्रा में वृद्धि होती है अपितु नीलहरित शैवालों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण के परिणामस्वरूप नाइट्रोजन की मात्रा में भी पर्याप्त वृद्धि होती है।

जलीय पौधा *एजोला पिन्नेटा* भी लवणीय तथा क्षारीय भूमि के पुनरूत्थान के लिए उत्तम है। इसके अतिरिक्त नीम (*एजाडिराक्टा इण्डिका*), इमली (*टेमरिण्डस इण्डिका*), अर्जुन (*टर्मिनेलिया अर्जुना*), करंज (*पानगैमिया पिन्नेटा*), आंवला (*फाइलैन्थस एम्बिलिका*), सफेद शिरीष (*एल्बिजिया प्रोसेरा*), खेजरी (*प्रासोपिस सिनेरेरिया*), बेर (*जीजीफस मारिसियाना*), सफेद शहतूत (*मोरस एल्बा*) तथा काला शहतूत (*मोरस नाइग्रा*) जैसी बहुउपयोगी वृक्षों की प्रजातियों के रोपण से भी लवणीय एवं क्षारीय भूमि के उद्धार की आवश्यकता है। उपर्युक्त वृक्षों की प्रजातियां लवणीय एवं क्षारीय भूमि पर सफलतापूर्वक उगती हैं तथा अपने मृत अवशेषों जैसे- पत्तियों, टहनियों, पंखुड़ियों, फलों आदि से मृदा के भौतिक तथा रासायनिक गुणों को परिवर्तित कर कृषि योग्य बना देती हैं।

जल-जमाव से ग्रसित बंजर भूमि का पुनरूत्थान केवल जल निकासी से ही संभव है। जल-जमाव की समस्या आमतौर से नहर से सिंचाई वाले क्षेत्रों की समस्या है। जल-जमाव से निपटने के लिए आवश्यक है कि सिंचाई के दौरान जल का प्रबन्धन ठीक प्रकार से हो साथ ही खेत से अतिरिक्त जल के निकास के लिए नाली की उपयुक्त व्यवस्था हो।

निष्कर्ष : सिकुड़ते भूमि संसाधन आज देश के लिए एक गंभीर समस्या हैं। भूमि क्षरण का प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ेगा जिससे न सिर्फ भूखमरी और कुपोषण जैसी समस्याओं में वृद्धि होगी अपितु कृषि पर आधारित देश की अर्थव्यवस्था पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। अतः देश को भूखमरी और कुपोषण से बचाने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था की मज़बूती के लिए उपजाऊ भूमि का संरक्षण एवं क्षरित भूमि का पुनरुत्थान अति आवश्यक है। भूमि संरक्षण के लिए पारम्परिक कृषि के स्थान पर संपोषित कृषि को अपनाना आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। ●

कपास में खरपतवारों की रोकथाम

✍ विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं सतबीर पूनिया
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कपास हरियाणा प्रान्त के दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्रों में उगाई जाने वाली खरीफ की मुख्य नकदी फसल है। कपास की फसल, खासकर बी. टी. कपास, में खूड से खूड व पौधे से पौधे का फासला अधिक होने व शुरू की अवस्था में कपास के पौधों की बढ़वार कम होने के कारण, खरपतवारों को उगने व पनपने का अनुकूल वातावरण मिलता है जिसके कारण कपास की फसल को भारी नुकसान पहुंचता है। यह खरपतवार केवल कपास की बढवार को ही नुकसान नहीं पहुंचाते अपितु मिलीबग, सांटा सूंडी व सफेद मक्खी जैसे कीड़ों को आश्रय दे कर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं।

कपास के मुख्य खरपतवार

संकरी पत्ती वाले - मकड़ा, छोटा सांवक, बड़ी सांवक, मधाना, तकड़ी घास, कुत्ता घास, चिड़ियों का दाना आदि।

चौड़ी पत्ती वाले - सांठी (इटसिट), कोंधरा, भाखड़ी, हजारदाना, मकरू बेल, चौलाई, पलपोटण, कागारोटी, जल भंगड़ा, कुकर भंगड़ा, झिरणीया, गंधेली, कनकुआ, चिलमिल आदि।

सदाबहार - हिरणखुरी, डीला (मोथा), मोथा, बरु, कांस, बुई, ढाब आदि।

उपर्युक्त सभी खरपतवारों में सांठी, कोंधरा, डीला (मोथा), मकड़ा व सांवक सबसे अधिक नुकसानदायक खरपतवार हैं। सांठी खरपतवार कपास की फसल में 2-3 बार उगता है और उगने के 15 दिन बाद ही इस पौधे में फूल आ जाते हैं। इसका एक पौधा बढ़कर ज़मीन पर गलीचा सा बना देता है और एक पौधे से लगभग 20 हजार बीज पैदा होते हैं जो कि ज़मीन पर गिरने के तुरन्त बाद भी उगने की क्षमता रखते हैं।

खरपतवारों की रोकथाम:

- कपास की फसल में पहली सूखी गुड़ाई बिजाई के 20-25 दिन बाद व दूसरी पहला पानी लगाने के बाद करें।
- जब फसल 50- 60 दिन की हो जाये तो बैलों वाली त्रिफाली से या ट्रैक्टर के पीछे कल्टीवेटर लगाकर हलौड दें।
- बिजाई के तुरन्त बाद 2-3 दिन के अन्दर स्टॉम्प 30 ई. सी. (पेंडीमेथालिन) की 1.5 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से सांठी, कोंधरा, सांवक व मकड़ा खरपतवारों का अच्छा नियन्त्रण हो जाता है।
- कपास में खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु, बिजाई के 40-45 दिन बाद सूखी गोड़ाई के पश्चात् स्टॉम्प 30 ई. सी. (पेंडीमेथालिन) की 1.5 लीटर मात्रा प्रति एकड़ को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तत्पश्चात् फसल में सिंचाई लगायें।
- जुलाई-अगस्त महीने अधिक बरसात होने पर सांठी व सांवक जैसे खरपतवार उगने पर ग्रेमक्सान 0.3 प्रतिशत यानि 3 मि. ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से या राउंड अप या ग्लाईसल (ग्लाईफोसेट) 0.5 प्रतिशत यानि 5 मि. ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से नोज़ल पर हुड (प्रोटेक्टर) लगाकर स्प्रे करें।

(शेष पृष्ठ 27 पर)

फसल अवशेष जलाने के दुष्परिणाम एवं प्रबन्धन विकल्प

✍ सपना, अमनदीप सिंह एवं सूबेसिंह[1]
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

विभिन्न फसलों की कटाई के बाद बचे हुए डंठल तथा गहराई के बाद बचे हुए पुआल, भूसा, तना तथा ज़मीन पर पड़ी हुई पत्तियों आदि को फसल अवशेष कहा जाता है। विगत एक दशक से खेती में मशीनों का प्रयोग बढ़ा है। साथ ही खेतीहर मज़दूरों की कमी की वजह से भी यह एक आवश्यकता बन गई है। ऐसे में कटाई व गहराई के लिए कंबाईन हार्वेस्टर का प्रचलन बहुत तेज़ी से बढ़ा है, जिसकी वजह से भारी मात्रा में फसल अवशेष खेत में पड़ा रह जाता है। जिसका समुचित प्रबन्धन एक चुनौती है। किसान अपनी सहुलियत के लिए इसे जला कर प्रबन्धन करते हैं। इसके पीछे किसानों के अपने तर्क हैं। उनका कहना है कि कुछ फसलें जैसे कि धान-गेहूं के फाने जल्दी मिट्टी में गलते नहीं हैं। साथ ही धान की रोपाई के समय खेत के किनारों पर इकट्ठे होने से मज़दूरों के पैरों में चुभते हैं। अलग से अवशेष प्रबन्धन में धन, मज़दूर, समय आदि की आवश्यकता होती है और दो फसलों के बीच उपयुक्त समय के अभाव की वजह से भी वे ऐसा करने के लिए बाध्य हैं। उनका यह भी कहना है कि फसल अवशेषों को जला देने से खेत साफ होता है। परन्तु इस तरह फसल अवशेष प्रबन्धन, खेत की मिट्टी, वातावरण व मनुष्य एवं पशुओं के स्वास्थ्य के लिए कितना घातक है इसका अंदाजा आज भी किसानों को नहीं है।

हमारे देश में सालाना 630-635 मि. टन फसल अवशेष पैदा होता है। कुल फसल अवशेष उत्पादन का 58 प्रतिशत धान्य फसलों से 17 प्रतिशत गन्ना, 20 प्रतिशत रेशा वाली फसलों से तथा 5 प्रतिशत तिलहनी फसलों से प्राप्त होता है। सर्वाधिक फसल अवशेष जलाने की रिपोर्ट पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश से है परन्तु आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, पूर्वी उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में भी फसल अवशेष जलाने की प्रथा चल पड़ी है और बदस्तूर जारी है। फसल अवशेष प्रबन्धन की विधियों की जानकारी न होने व होते हुए भी किसान अनभिज्ञ बने हुए हैं। आज कृषि के विकसित राज्यों में मात्र 10 प्रतिशत किसान ही अवशेषों का प्रबन्धन कर रहे हैं।

फसल अवशेष जलाने से मृदा में होने वाली हानियां

- भूमि की उर्वरा शक्ति में ह्रास: अवशेष जलाने से 100 प्रतिशत नत्रजन, 25 प्रतिशत फास्फोरस, 20 प्रतिशत पोटाश और 60 प्रतिशत सल्फर का नुकसान होता है।
- भूमि की संरचना में क्षति होने से पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में स्थानान्तरण नहीं हो पाना तथा अत्यधिक जल का निकासी न हो पाना।
- भूमि के कार्बनिक पदार्थों का ह्रास।
- फसल अवशेषों से मिलने वाले पोषक तत्वों से मृदा वंचित रह जाती है।
- ज़मीन की ऊपरी सतह पर रहने वाले मित्र कीट व केंचुआ आदि भी नष्ट हो जाते हैं।

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव

- अस्थमा और दमा जैसी सांस से सम्बन्धित बीमारियों के मरीज़ों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है साथ ही इन रोगों के मरीज़ों की संख्या में तेज़ी से वृद्धि हो रही है।
- सल्फरडाईऑक्साइड व नाइट्रोजनऑक्साइड के कारण आंखों में जलन।
- चर्म रोग की शिकायत बढ़ जाती है।
- हाल के वर्षों में फसल अवशेष जलाने की वजह से कैंसर जैसी बीमारी के मरीज़ों की संख्या में वृद्धि हुई है।

पर्यावरण सम्बन्धी दुष्परिणाम

- यह वैश्विकतपन (ग्लोबलवार्मिंग) को बढ़ाता है।
- स्मॉग जैसी स्थिति पैदा हो जाती है जिससे सड़क पर दुर्घटना होती है।
- फसल अवशेष के साथ-साथ खेत के किनारे के पेड़ों को भी आग से नुकसान पहुंचता है।
- ओज़ोन परत का ह्रास।
- अत्यधिक मात्रा में कार्बनडाईऑक्साइड के उत्सर्जन से नुकसान।
- ग्रीन हाऊस गैसों का अधिक मात्रा में उत्सर्जन से वैश्विकतपन को बढ़ावा।

अवशेष प्रबन्धन विकल्प

अभी तो मुख्यत: पशुचारा के लिए कुछ अवशेष इकट्ठा करने के उपरान्त शेष को जलाया जा रहा है जिससे पर्यावरण, मनुष्य एवं पशु स्वास्थ्य की हानि हो रही है। अवशेष प्रबन्धन विकल्प इस प्रकार हो सकते हैं:

- अवशेषों को पशुचारा अथवा औद्योगिक उपयोग के लिए इकट्ठा करना।
- अवशेषों को मिट्टी में मिश्रित करना।
- अवशेष को भूमि की सतह पर रखना।
- अवशेषों से कृमि खाद बनाना।
- अवशेषों से इथेनॉल का उत्पादन करना।
- अवशेषों से बायोगैस का उत्पादन करना। ●

(पृष्ठ 26 का शेष)

सावधानियां :

- खरपतवारनाशक की सिफारिश की गई मात्रा को पानी की सिफारिश की गई मात्रा (250 से 300 लीटर) में मिला कर शाम के समय पर ही छिड़काव करें। अगर ज़मीन में नमी की थोड़ी कमी हो तो पानी की मात्रा बढ़ा लें।
- स्टॉम्प (पेंडीमेथालिन) के छिड़काव के समय खेत में अच्छी नमी ज़रूर हो।
- फसल बड़ी होने पर किए जाने वाले खरपतवारनाशक का प्रयोग केवल तब करें जब खेत में नमी हो।

अगर स्प्रे पम्प गेहूं की फसल में 2,4-डी. के छिड़काव हेतु प्रयोग किया गया है तो कपास की फसल में छिड़काव करने से पहले पम्प को अच्छी तरह साबुन से धो कर ही प्रयोग में लायें। ●

सोयाबीन उत्पाद: प्रोटीन का उत्कृष्ट स्रोत

✍ **अरुण कुमार अटकान, सुनील कुमार एवं नितिन कुमार**
प्रसंस्करण और खाद्य अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सोयाबीन एक फलीदार पौधा है और प्रोटीन का उत्कृष्ट स्रोत है। सोयाबीन भारतीय खाद्य तेल पूर्ति में महत्वपूर्ण योगदान देता है। दुनिया की तिलहन की खेती में सोयाबीन का महत्वपूर्ण स्थान है। सोयाबीन वैश्विक वनस्पति तेल उत्पादन में 25% का योगदान देता है। विश्व उत्पादन का लगभग 85% सालाना सोयाबीन पिसान और तेल में संसाधित होता है। अधिकांश सोयाबीन पिसान (लगभग 98%) को पशु चारा बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। लगभग 95% सोयाबीन खाद्य तेल के रूप में सेवन किया जाता है और बाकी का उपयोग उद्योग में फैटी एसिड, साबुन और बायोडीज़ल के बनाने में उपयोग किया जाता है। 2017-2018 में वैश्विक सोयाबीन उत्पादन एफएओ (FAO) के अनुसार 336.8 मिलियन टन था। भारत में 2017-18 में सोयाबीन का उत्पादन 10.56 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में 11.39 मिलियन टन था। भारत ने 2017-18 वित्तीय वर्ष के दौरान 240982 टन सोयाबीन का निर्यात किया था। कुल तिलहन में सोयाबीन का योगदान 43% और देश में कुल तेल उत्पादन का 25% है।

भारत में अधिकांश जनसंख्या कम प्रोटीन वालेभोजन का उपभोग कर रही है जबकि प्रोटीन मानव के लिए अति आवश्यक पोषक तत्त्व है। सोयाबीन अच्छी गुणवत्ता वाले प्रोटीन का एक समृद्ध स्रोत है जो लगभग 40% है, जो किसी भी अन्य फलियां और मांस में उपलब्ध प्रोटीन से अधिक है। सोयाबीन में न केवल प्रोटीन की प्रचुर मात्रा होती है, बल्कि इसमें मानव शरीर के अच्छे पोषण के लिए आवश्यक सभी प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्व के साथ-साथ फाइबर, विटामिन, खनिज और आवश्यक अमीनो एसिड भी होते हैं। सोयाबीन प्रोटीन की गुणवत्ता दूध और अंडे के प्रोटीन के बराबर होती है। सोयाबीन में तेल की मात्रा भी अधिक होती है। सोयाबीन ओमेगा -3, 6 (Omega-3, 6) और फैटी एसिड के अच्छे स्रोत के साथ भी निहित है जो मछली के तेल में पाए जाते हैं। सोयाबीन डाइट्री फाइबर (घुलनशील और अघुलनशील) का भी एक उत्कृष्ट स्रोत है। सोयाबीन में क्रमश: दोगुना, 4 गुना, 6 गुना और 12 गुना प्रोटीन दाल, अंडे, चावल और दूध की अपेक्षा अधिक होता है। सोयाबीन दांतों को मज़बूत करने में मदद करता है और तंत्रिका विकार को रोकता है क्योंकि इसमें कैल्शियम, मैग्नीशियम और फास्फोरस होते हैं।

जैसे-जैसे सामान्य लोगों में स्वास्थ्य के प्रति चेतना बढ़ रही है, सोयाबीन प्रोटीन की स्वीकार्यता भी बढ़ रही है। सोया नगेट्स, सोया फोर्टिफाइड गेहूं का आटा, सोयापनीर और दही जैसे बहुत सारे सोया उत्पाद भारत की शाकाहारी आबादी का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं।सोयाबीन प्रोटीन के रूप में यह एक कम वसा और उच्च प्रोटीन उत्पाद है।

आज जैसे कि दूध उत्पाद हानिकारक रसायनों की मिलावट के साथ आ रहे हैं, इसलिए सोयाबीन उत्पादों को बेहतर विकल्प माना जा रहा है। लेकिन सोया उत्पादों के लाभों के बारे में लोगों में जागरूकता की कमी के कारण सोयाबीन का बाज़ार इतना अधिक नहीं है। सोया उत्पादों के स्वास्थ्य लाभों के बारे में लोगों को जागरूक करने की आवश्यकता है।

सोयामिल्क : सोयामिल्क आम तौर पर अपारदर्शीय सफेद रंग का होता है और लगभग गाय के दूध समान होता है। गाय के दूध तथा सोयाबीन के दूध में प्रोटीन का अनुपात समान है जो लगभग 3.5% है और इसमें 2%

वसा, 2.9% कार्बोहाइड्रेट, 0.5% विटामिन और खनिज भी होते हैं। सोया पनीर मैग्नीशियम का अच्छा स्रोत है जो हड्डियों, हृदय और धमनियों के कामकाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सोयामिल्क कोलेस्ट्रॉल मुक्त होता है, जो फॉस्फोलिपिड के पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड से भरपूर होता है और इसमें वसा की मात्रा कम होती है। सोयामिल्क ऑस्टियोपोरोसिस से बचने में मदद करता है। सोयामिल्क में उपलब्ध फाइबर ब्लड शुगर को नियंत्रित करता है। यह गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए फायदेमंद है।

सोया पनीर (टोफू): सोयाबीन दूध को पानी में सोयाबीन को पीसकर बनाया जाता है। सोया पनीर (टोफू) बनाने के लिए सोया मिल्क एक मध्यवर्ती उत्पाद है। टोफू कैल्शियम और प्रोटीन युक्त होता हैजो कि सोयामिल्क से तैयार किया जाता है । सोया पनीर मांसपेशियोंको स्वस्थ रखने वाले इच्छुक लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहा है क्योंकि सोयाबीन में प्रोटीन अधिक और वसा की मात्रा बहुत कम होती है। टोफू का उपयोग सामान्य घरों में सब्जी बनाने के लिए किया जाता है। सोया पनीर की कीमत डेयरी दूध पनीर के आधे से भी कम है और इसमें साधारण डेयरी दूध पनीर की तुलना में अधिक पोषक तत्व हैं।

सोया उत्पाद बनाने की विधि : सोया मिल्क बनाने के लिए पहले सूखे सोयाबीन को पानी में रात भर (12 घंटे) कमरे के तापमान पर भिगोया जाता है। सोयाबीन को भिगोने के बाद, पानी के साथ पीस दिया जाता है, उसके बाद बने घोल को उबाला जाता है ताकि सोयाबीन ट्रिप्सिन अवरोधक को निष्क्रिय करके उसके स्वाद गुणों में सुधार किया जा सके। कड़वाहट और एंटीइंफ्लेमेटरी कारकों को हटाने के लिए सोडियम बाइकार्बोनेट (0.3%) पानी में मिलाया जाता है। घोल को 15-20 मिनट की अवधि के लिए उबालना होता है। उसके बाद, एक दोहरा मसलिन कपड़े का उपयोग करके अघुलनशील अवशेषों (सोया पल्प) को छाना जाता है। 15 मिनट और 118 डिग्री सेल्सियस पर खाद्य उत्पाद का जीवाणु-नाशन किया जाता है। जो कि छह महीने तक संरक्षण अवधि को बढ़ाता है। आम तौर पर, 1 किलो सोयाबीन से, 6.5-7.5 लीटर सोयामिल्क तैयार किया जा सकता है। सोयामिल्क को सोया पनीर या दही तैयार करने के लिए उपयोग किया जाता है। सोयामिल्क बाज़ार में विभिन फ्लेवर के साथ भी उपलब्ध है। आम तौर पर चॉकलेट, वैनिला, इलायची के साथ-साथ अनानास और आम का स्वाद भी लोकप्रिय है।

टोफू और अन्य सोया उत्पादों को खाने के फायदे :

1. सोया खाद्य पदार्थ उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन का समृद्ध स्रोत हैं। सोया, मांस, दूध और अंडे के जैसा गुणवत्ता वाला प्रोटीन प्रदान करता है।
2. सोया उच्च कोलेस्ट्रॉल, उच्च रक्तचाप और हृदय और रक्त वाहिकाओं के रोगों को रोकने के लिए प्रयोग किया जाता है।
3. यह टाइप 2 डायबिटीज, अस्थमा, लंग इंफैक्शन, सभी प्रकार के कैंसर (लंग कैंसर, एंडोमेट्रियल कैंसर, प्रोस्टेट कैंसर और थायराइड कैंसर) के साथ-साथ कमज़ोर हड्डी (ऑस्टियोपोरोसिस) को रोकने और किडनी रोगों की प्रगति धीमी करने में भी उपयोग किया जाता है।
4. महिलाएं स्तन दर्द, स्तन कैंसर की रोकथाम,रजोनिवृत्ति के लक्षण और प्रीमेन्स्ट्रुअल सिंड्रोम (पी एम एस) के लिए भी सोया का उपयोग किया जाता है।
5. गर्भावस्था के दौरान उपयोग किए जाने पर सोया संभवत: असुरक्षित हो सकता है। गर्भावस्था के दौरान अधिक खुराक बच्चे के विकास को नुकसान पहुंचा सकती है। ●

वृद्धावस्था में तनाव से राहत

✍ आशमा एवं मंजु दहिया
विस्तार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आजकल की भागदौड़ भरी ज़िन्दगी में तनाव हमारे जीवन का हिस्सा बन गया है। तनाव के कारण हमारे शरीर से निकलने वाले हार्मोन्स का संतुलन बिगड़ जाता है, जिससे मस्तिष्क और शरीर उत्तेजित हो जाता है। समय के साथ लगातार इस प्रकार की उत्तेजना व्यक्ति पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। बुजुर्ग लोगों में अन्य आयु वर्ग की तुलना में तनाव अधिक होता है क्योंकि बच्चों के बाहर काम करने व उनके पास समय के अभाव के कारण अधिकतर बुजुर्ग अकेले रहते हैं। शारीरिक रूप से भी कमज़ोर होने के कारण अधिक परिश्रम नहीं कर पाते हैं जिसके कारण वे आर्थिक रूप से भी असहाय हो जाते हैं और उम्र बढ़ने के कारण शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण अनेक संक्रामक बीमारियों से घिर जाते हैं एवं रिश्तेदार और परिवार के लोग उनसे किनारा करना शुरू कर देते हैं। अकेलेपन के कारण वो अपनी भावनाएं व समस्याएं भी किसी से साझा नहीं कर पाते हैं और इसी से वे तनाव का शिकार हो जाते हैं।

तनाव का बुजुर्गों पर होने वाला शारीरिक व मानसिक प्रभाव :

- लम्बे समय तक तनाव (जैसे : थकान महसूस करना, याद्दाश्त में कमी आ जाना, भूख कम लगना व पाचन शक्ति कम होना, नींद न आना, आदि) मस्तिष्क की कोशिकाओं को नुकसान पहुंचा सकता है।
- हृदय रोग, हाई ब्लड प्रेशर तथा कैंसर जैसी बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है तथा बीमारियों से लड़ने की क्षमता कम होना जिससे स्वस्थ होने में समय लगना।
- कई वृद्ध तनाव की वजह से शराब का अधिक सेवन करना शुरू कर देते हैं जिससे क्रोध आना या सुस्त बने रहना, सामाजिक जीवन में कमी व अकेले रहने की इच्छा इत्यादि कई दुष्प्रभाव हैं।

तनाव को खत्म करने के लिए सबसे पहले तनाव की वजह को पहचानना आवश्यक है। यदि लम्बे समय तक दु:ख, चिंता या जीवन जीने की इच्छा में कमी हो रही है तो समझ लें कि आप तनाव में हैं। तनाव की वजह से कुछ बुजुर्ग रोने लगते हैं तो कुछ समाज से पीछे हट जाते हैं।

तनाव से बचने के आसान तरीके :

- बुजुर्ग व्यक्ति को यथासंभव सशक्त और तनाव रहित बनाए रखने में उनकी सहायता करें एवं उनकी उचित दैनिक गतिविधियों में हस्तक्षेप न करें।
- तनाव से निपटने के लिए भरपूर नींद लें और स्वस्थ आहार का प्रयोग करें तथा सामाजिक गतिविधियों में भाग लें।
- नियमित व्यायाम करें, गहरी सांस, ध्यान तथा योग करने से भी तनाव में कमी आती है।
- अपना मनपसंद संगीत सुने, अगर किताबें पढ़ने के शौकिन हैं तो किताबे पढ़ें।
- परिवार में रोज़मर्रा में होने वाले निर्णय/फैसलों में बुजुर्गों का सहयोग लें तथा सामाजिक गतिविधियों/समारोह में वृद्ध लोगों को घर की जिम्मेदारी के लिए छोड़ जाने की बजाए उनको समारोह में साथ रखें।
- कैफिन और शराब के सेवन से बचें।
- अगर घर में अकेले रहते हों तो किसी समूह में जाना प्रारम्भ कर दें।
- जितना संभव हो सके वृद्ध लोगों के साथ समय व्यतीत करें तथा उनसे अपने विचार साझा करें, उनकी भावनाओं का सम्मान करें व ख्याल रखें।

फिर भी अगर तनाव दिन प्रति-दिन बढ़ता जा रहा हैं तो अपने चिकित्सक से मदद लें। ●

Agro-physics in the Field of Agriculture and Environment

✍ **Ankush Sheoran[1], Ekta Arya[2] and Satyawan Arya**
Department of GPB (Forage Section)
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Agro-physics is a vital name in the field of agriculture and environment. It acts an important role to the environment and in the control of hazards to agricultural matter such as soils, plants, agricultural products and foods. The division of Agricultural Physics was well-known in 1962. The division has made major movement on research, teaching and training in the subject areas such as Soil Physics, Agricultural Meteorology, Remote sensing and further more. The knowledge of physical phenomena in agricultural environment allows rising effectiveness of use of water and chemicals in agriculture and declining biomass losses during harvest, transport, storage and processing. A range of processes of natural or human cause such as: erosion, compaction, crusting, desertification water logging have physical character and their improvement may be done also with the use of physical treatments.

Soil erosion is a globally major environmental process. Part of soil erosion processes is wind erosion in which wind are erosive forces in soil detachment and transport. Movement of shifting sand dunes in deserts is main cause of wind erosion. Its effect is soil loss, leading to land degradation and desertification and it also affects the global dust particle concentration in the atmosphere. It can be controlled by minimizing the wind force at the soil surface by stripe cropping or by wind barriers, e.g. shelterbelts. Also production on the soil surface stable aggregates or clods resistant to wind force, and the use of chemical surface films are recommended.

Soil compaction is the process of increasing the density of soil by packing the soil particles closer together causing a reduction in the volume of air. The volume of soil compacted by a wheel pass varies with soil type, soil moisture, tire size, pressure and total load. Pressures are transmitted deeper into wet soil than in dry soil by the same tyre size and wheel load. Compaction usually results in less plant root proliferation in the soil and lowers the rate of water and air movement. It can be reduced and prevented by reducing secondary tillage passes as each additional tillage pass destroys aggregates and increases bulk density and reduce surface pressure by reducing tyre pressure or by using lighter axle loads.

Soil crusts are caused by natural events such as raindrop impact and the following drying process. They consist in the formation of hard thin layers at the soil surface and are widespread especially in the soils of arid and semi-arid regions. Their thickness usually ranges from less than 1 mm to 5 cm. When dry, these features are more compact, hard and brittle than underlying soil materials and not only decrease both the size and the number of pores, but also modify the arrangement of the pore system. The most important disadvantages of soil crusts are decreasing infiltration rate, reduced evaporation, increasing runoff and decreasing crop yields. Many experiments have shown that conservation tillage practices such as zero tillage, minimum tillage, surface mulching, contour ploughing, etc., reduce run-off, soil loss and are best suited to preventing and controlling crusting. Irrigation management can strongly influence crust formation. The chemical composition of irrigation water and the kinetic energy of water applied by overhead irrigation are the most important factors to consider in the case of irrigation of soils susceptible to crusting.

Water logging refers to the saturation of soil with water. Soil may be regarded as waterlogged when it is nearly saturated with water much of the time such that its air phase is restricted and anaerobic conditions prevail. In extreme cases of prolonged water logging, anaerobiosis occurs, the roots of mesophytes suffer and the sub-surface reducing atmosphere leads to such processes as denitrification, methanogenesis and the reduction of iron and manganese oxides. It is prevented by choosing permeable surfaces when laying drives, paths and patios to allow rain to soak in, improve soil structure and drainage through cultivation, apply a balanced fertilizer in the spring, mulching over the root area after application and many more.

Coupling of soil mechanical and conductive (hydraulic) processes affecting the time dependent strain and the alteration of pore functions: e.g. aeration and water fluxes to help the specification of appropriate agricultural machinery to avoid excessive soil and sub-soil compaction. Developing non-invasive soil sensors to improve the difficulty in researching below ground processes (e.g. root development, water movement, etc.). More research is needed in plant breeding to develop crop varieties for physically stressed environment, e.g. lodging.

(Contd. on page 32)

[1]Panjab University, Chandigarh-160014
[2]Guru Jambheshwar University of Science & Technology, Hisar

Teak (*Tectonagrandis*) : A Long Term FD for Farmers

✍ **B. S. Mandal, Neelam Mandal[1] and Jagdish Chander[2]**
Krishi Vigyan Kendra, Ambala City
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Teak is a principal timber species of peninsular India. Teak reaches large dimension in some of the forests of Western and Southern India and the vast teak forest constitute one of the greatest natural assets. After realising its economic importance as a valuable timber species the teak plantations have been established outside its natural origin. Perhaps the first attempt of tree plantation in India was started with teak planting.

Climatic requirements : Teak has wide climatic adaptability. Though it occurs in dry localities, subjected to greater temperature drought in the hot season, it thrives best and reaches its largest dimensions in a fairly moist, warm, tropical climate, on well drained, deep alluvial soil teak occurs remarkably pure and put on good growth.

Silvi-cultural character : Teak is a strong light demander; it will not tolerate suppression at any period of its life. Requires complete overhead light as well as fair amount of side room for its proper root development. Teak is a fire hardy species. Teak is not browsed by wild animals or cattle and it has tremendous capacity to withstand the unfavourable situations. Teak coppices and pollards vigorously and sometimes retain the power of coppicing to a considerable size. Teak flowers in July-August, seeds can be collected between December and April.

Artificial regeneration : Artificial regeneration of teak can be done by both direct dibbling of seed and planting the seedling raised in the nursery.

Nursery : Seed should be collected from healthy and vigorous medium aged mother tree. Seed are expected to have viability for two years. Good seed have 2300 seed counts per kilogram.

Seed beds : Raised seed beds of 12 meter length and 1.2 meter width are prepared with proper soil working and cleaning. Farmyard manure, sand and compost should be mixed and filled in 1:1:1 proportion. For each seed bed 5 to 8 kg of seeds are sufficient. However, before the seeds are sown into the nursery bed, the seeds should be soaked in cow dung slurry and dried alternatively in shade and sunlight. While drying the seeds, it is advisable to heap the seeds in small heaps with occasional sprinkling of water. This operation has to be done two weeks before sowing in the bed. The beds are to be prepared in areas where the sunlight is not limiting factor. Soon after the sowing of seeds, the beds are covered with straw and watering should be done every day. It is advisable to take up sowing of seeds during April-May. It is expected that within 25 days from the date of sowing, the seeds start germinating and by end of June complete germination will take place. After seedlings reaches around 11 to 18 inches height, the stumps are to be prepared. Stumps are prepared with the size of one inch length and 6 to 7 inch of root length.

Planting : Area where teak is proposed to be planted should be cleared and burnt. This is a very important operation as the cleaning and burning prevents weed growth immediately after rainy season. The spacing recommended is 2 m x 2 m with the pit size of 30 cm x 30 cm x 30 cm. It is advisable to take up pitting work before monsoon and as soon as the starts, the seedlings should be planted in the field. If the stump planting done, the stumps can be planted in prepared alignment in crow bar holes. Stump should be planted very firmly ensuring that the tip of the stump is at least 1"below from the ground level.

Fertilization in Teak plantation: Application of Calcium has improved the plantation condition considerably. And in general, the organic matter level in teak plantation is high due to heavy litterfall. therefore, application of Nitrogen may not be necessary.

Teak plantation on farm lands : Of late, some progressive farmers have take up cultivation of teak plantation under irrigated condition as short rotation crop of 10 to 12 years. Generally, these plantations are raised on farm lands which are not very fertile as compared to forest lands. Therefore, for efficient use of moisture availability, application of the organic and inorganic manure is essential to get good increment.

Cultural operation : Soon after planting, the weeding, soil working and other tending operation should be done periodically to provide favourable environment to the plants to put on good growth. Weeding, climber cutting and other tending operations should be carried out as and when necessary.

Rotation : At present, the economic rotation followed in case of teak plantation is 80 to 100 years. However, with the improvement in the management practices like, fertilization and irrigation, it can be reduced to 40 to 50 years for

[1]Govt. PG College, Sector-1, Panchkula
[2]IFS, Govt. of Haryana

smaller dimension timber which can fetch very good return.

Thinning of Teak plantation :

(*A) First thinning :* To reduce the competition and to provide more space for maximum crown development, the first thinning is done between 6th and 10th year. Thinning can be done in alternate diagonal rows of plantation. After removing the alternate rows, the population per hectare would be around 1250/ha.

(B) Second thinning : After 12 years and before 18 years, teak plants are to be thinned out to provide adequate spacing for better growth and development. Generally, it is recommended to remove any alternative. After second thinning, the population would be 625/ha.

(C) Third thinning : After 21 years and before 30 years, the diseased and moribund should be removed to provide adequate space and light for proper development of the tree. After third thinning, the plant population per hectare is between 500 to 550.

(D) Fourth thinning : After 40 years of age, the periodical thinning can be done with an objective of providing adequate space to well growing healthy trees by removing the suppressed trees. By doing this at the end of rotation age, there will be 400 to 500 tree population per hectare.

Pests :

Defoliators : Hebliapurea is most common pest on teak trees. The insect damages the foliage by eating the leaf leaving only midribs and veins. Biological control of this pest has been attempted on a small scale by releasing the predators through artificial breeding.

Leaf skeletonisers : Piraspamachiralis is a common leaf skeletonisers, the pest eats the parenchymatous tissue of the leaf and thereby leaving the leaf without any green portion.

Nutrient cycle in teak : A 33 years old teak returns organic matter to soil, 5300 kg/ha from leaves, 100 kg/ha from twig and 500 kg/ha from fruits totalling about 5900 kg of organic matter per hectare per year. Nutrient content of plant litter was recorded to be 132 kg Ca, 6 kg Mg, and 11, 20, 52 kg/ha of NPK, respectively per year. It is reported that 36, 45, 10.5 and 3.5 kg of Mg, NPK/ha/year is utilised by the teak plants of 37 to 40 years age.

Yield : The timber yield from teak plantation varies depending on the locality factors for different quality classes. ●

Processing of Aonla for Candy Preparation

✍ **Peter Mwaurah, Ravi Kumar and Nitin Kumar**
Department of Processing & Food Engineering
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Aonla, also known as Indian gooseberry or Amla, is an indigenous fruit of Asian origin that is capable of thriving in tropical and sub-topical areas thanks to its hardy nature. The plant is hardy in such a way that it can tolerate the high summer temperatures of 46°C as well as the low winter temperatures. Additionally, it is deciduous making it possible to flourish in both cultivated and wild kind of environment. India's annual production in year 2017 stood at 1.22 million tons with the total cultivated area of 103 thousand hectares. Major growing areas include Uttar Pradesh, Madhya Pradesh and Tamil Nadu states. However, the sowing of this fruit is picking up in most states and not limited to Maharashtra, Gujrat, Punjab, Haryana and Rajasthan among other states in the South.

Aonla fruit is regarded as a 'wonder fruit for health' owing to the enormous potential in the market for its various medicinal, culinary and nutraceuticals properties. The fruit has widely been used to treat vast range of diseases and disorders like diarrhea, asthma, diabetes, skin diseases, leprosy, anemia, dysentery, jaundice, bronchitis and cancer. Some of its crucial vitamins and minerals includes vitamin C and E, tannins, polyphenols and pectin, calcium, phosphorous and iron. The quantity of vitamin C from the fruit is 20 folds that found in oranges and is therefore regarded as the richest source of this vitamin. Compared to apples, aonla fruit tissues contain 3 times as much protein and about 160 times the vitamin. In discrete form, a 100 grams of the aonla pulp contains approximately 500-600 mg of vitamin C. Despite its nutritional and medicinal value, aonla is hardly consumed in fresh form owing to its acidic and bitter taste caused by tannins and polyphenols. For this reason, it is processed to produce organoleptically appealing and consumable products with respect to aroma and taste. Some of these processed end products include aonla sause, jam, juice, candy, squash, pickles and preserves. Aonla candy is a powerful herb that offers a rejuvenating effect to its consumers.

Fruit candies have gained prominence in the

last decade majorly due to their high nutritional value and ability to store for extended period of time as compared their fresh counterparts. Fruit candies can now be consumed as ready-to-eat snacks thanks to the advancements in processing technologies. The growing calorie and sugar consciousness among people has necessitated the development of low calorie as well as sugar free aonla candies so as to cater for the diverse needs of the population. This has widened the range of usage to reach out to people under different health conditions and particularly the diabetic ones. The use of artificial sweeteners has substituted sugar with the advantage of providing low energy products as compared to equivalent concentrations of sugar. Aonla candy processing follows the below explained steps.

Sorting and cleaning of the mature fruits Quality and healthy products starts with quality and hygienic raw materials. Maturity status has an effect on the nutritional composition of the fruits and therefore fully mature fruits should be considered.

Blanching : The fruits are immersed in boiling water for 2-3 minutes. This makes them tender and allows for easier separation of the stones from the fruit flesh. Blanching for extended period of time results in leaching of nutrients and should be avoided.

Segmentation : The fruit parts are separated from the stones. The stones are discarded while the fruit flesh is divided into small sections along its segment boundaries. Naturally, the fruit has a segmented body. The aim is to facilitate diffusion of the sweeteners during steeping.

Steeping. The segments are dipped in a preferred sweetening syrup for around 24 hours with the aim of taking away the bitterness and imparting an appealing taste to the segments. It should be noted that sweeteners are not ideally meant to make the product sugary. Different sweeteners serve different purposes with some producing zero sugar and zero calorie candies.

Draining and Drying : The excess syrup is drained off and the segments dried out. The drained fluid contains a lot of nutrients and is usually used as honey. The segments are allowed to dry to lower their moisture content and to facilitate their keeping quality. Both solar and mechanical driers are applicable but overheating and over drying should be avoided so as to maintain the nutritional composition of the fruit candy. Additionally, over drying will turn the product hard affecting its palatability.

Packaging and storage : The dried aonla candy segments are packaged in polyethylene pouches and kept in cool and dry place. The role of packaging and storage is to avail the candy all year round after the harvesting season.

In simplest terms, aonla candy refers to dehydrated small pieces steeped in a sweetener. Unlike traditional methods employed by our forefathers which were somewhat unhygienic, time consuming and with nutritionally compromised end products, the modern methods are at capacity to maintain the nutritional content of the fruits. Additionally, the modern methods are offering nutritionally delicious candies and not just a sugary product. As far as aonla processing machines are concerned, there is still a great way to go as most of the work is still done manually. However, with the growing popularity of health foods and herbal products such as aonla among others, has unraveled the need for development of efficient and high capacity processing machines.

Aonla candy has lots of benefits to the consumers and most importantly can be consumed by all people regardless of their age, gender or health condition, all that is needed is to make the right candy selection. Unlike toffee, chocolates, sugar candies and other confectionaries, aonla candy is rich in vitamin c and poses no health risks or concerns. Considering the mentioned health benefits and medicinal applications, it is vivid that the full potential of aonla fruit still remains unrealized. However, with the growing popularity of the fruit, it will become indispensable as far as health is concerned. ●

(from page 29)

A lot of studies have clearly verified that the use of synthetic soil conditioners, such as dextrans, polyvinyl alcohol, etc., increase the collective stability of soils. Therefore, such conditioners can be useful and effective in the prevention of crust formation. The limitation of the use of these conditioners on a large scale depends on their cost.

In agriculture and natural environment, the use of physical laws and modern measuring methods allow us to forecast, estimate, monitor, mitigate, restrict and control unfavourable phenomena of physical degradation of soil environment and plant materials. ●